



वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

SW- 05

Personality and Behaviour Dynamics

(व्यक्तित्व एवं व्यवहार गतिकी)

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या एवं इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 व्यक्तित्व :अर्थ एवं प्रकार	1-12
इकाई 2 व्यक्तित्व के सिद्धांत	13- 24
इकाई 3 व्यक्तित्व की समस्याएं	25- 29
इकाई 4 व्यक्तित्व का विकास	30-36
इकाई 5 मानव व्यवहार	37-44
इकाई 6 मानव व्यवहार के आयाम	45-63
इकाई 7 सामूहिक व्यवहार	64 -68
इकाई 8 सामाजिक प्रत्यक्षीकरण	69-76
इकाई 9 सामाजिक मानदण्ड व मूल्य	77-91
इकाई 10 सामाजिक प्रक्रिया : सहयोग ,प्रतियोगिता एवं संघर्ष	92- 103

व्यक्तित्व: अर्थ, एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 प्रस्तावना
- 1.3 व्यक्तित्व का अर्थ
- 1.4 व्यक्तित्व की विशेषताएं
- 1.5 व्यक्तित्व के प्रकार
- 1.6 सारांश
- 1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. व्यक्तित्व के अर्थ एवं अवधारणा को जान सकेंगे।
2. व्यक्तित्व की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

सामान्य रूप से व्यक्तित्व का अर्थ इन गुणों के समावेश से लगाया जाता है जो अन्य व्यक्तियों पर अपना प्रभाव स्थापित करने में सहायक होते हैं। व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसका मानसिक या मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनों ही पक्ष होते हैं। यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन है जो आपस में अंतःक्रिया करते हैं। इस तंत्र के मुख्य तत्व क्षीलगुण, संवेग, आदत, ज्ञानशीलता, चित्र, प्रकृति, चरित्र तथा अभिप्रेरक आदि हैं जो सभी मानसिक गुण हैं परन्तु इनका आधार शारीरिक अर्थात् व्यक्ति के ग्रंथीय प्रक्रियाओं एवं तांत्रिकीय प्रक्रियायें हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि व्यक्तित्व न तो पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक है और न तो पूर्णतः शारीरिक ही है। व्यक्तित्व इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

1.3 व्यक्तित्व का अर्थ

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। कभी यह व्यवहार को स्पष्ट करता है, कभी मानसिक क्षमता को ; कभी समयोजन की क्षमता के रूप में इसका उपयोग किया जाता है और कभी यह शारीरिक बनावट को स्पष्ट करता है। अतः व्यक्तित्व के वास्तविक अर्थ को जानना आवश्यक है।

शाब्दिक अर्थ –

व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी भाषा के पर्सनाल्टी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। पर्सनाल्टी शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'परसोना' से हुई है। 'परसोना'(Persona) शब्द का अर्थ एक प्रकार के ऐसे पहनावे से है जो नाटक के समय कलाकार मंच पर विशेष भूमिका अदा करने के लिए पहनता है। परन्तु मुखोटे अथवा पहनावे द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व वास्तविकता से भिन्न हो जाता है। इस अर्थ में व्यक्तित्व को व्यक्ति के बाह्य गुणों के आधार पर समझा जाता है, परन्तु इससे व्यक्तित्व का वास्तविक अर्थ स्पष्ट नहीं होता है।

सैद्धांतिक अर्थ - सैद्धांतिक रूप से व्यक्तित्व को 5 दृष्टिकोणों से देखा जाता है -

- (1) सामान्य दृष्टिकोण
- (2) दार्शनिक दृष्टिकोण
- (3) समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण
- (4) मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण
- (5) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

सामान्य रूप से व्यक्तित्व का अर्थ उन गुणों के समावेश से लगाया जाता है जो दूसरों पर अपना प्रभाव स्थापित करने में सहायता करते हैं। इस प्रकार व्यक्तियों की वे विशेषतायें जो दूसरों को प्रभावित करने में सहायता करती हैं, व्यक्तित्व के अन्तर्गत आती हैं। दार्शनिक विचारधारा के अनुसार व्यक्तित्व का तात्पर्य आत्मज्ञान तथा पूर्ण आदर्श से है। व्यक्ति की मानसिक रचना में ज्ञान का प्रारूप तथा उसकी आदर्शवादिता व्यक्तित्व के अन्तर्गत सम्मिलित की जाती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व के अन्तर्गत उन गुणों को सम्मिलित करते हैं जो व्यक्ति का समाज में कार्य एवं पद निर्धारित करते हैं। सामाजिक प्रभावशीलता इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रमुख लक्षण है। मनोविश्लेषण विचारधारा के अनुसार व्यक्तित्व में 3 अंग प्रमुख हैं - इड, अहं तथा पराअहम। अचेतन मन की मूल प्रवृत्तियाँ वास्तविकता से सम्बन्धित होती हैं तथा तृप्ति चाहती हैं। अहं इस शक्ति पर विवेक, तर्क एवं चेतना से रोक लगाता है। अहं शक्ति ही वास्तविक व्यवहार करवाती है। समाज के अनुरूप व्यवहार करने की योग्यता पराहम द्वारा उत्पन्न होती है। अतः व्यक्तित्व में ये तीन शक्तियाँ प्रभावकारी होती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति का पूर्ण संगठन जो कि विकास के किसी स्तर पर होता है, व्यक्तित्व के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

उपरोक्त वर्णित सभी दृष्टिकोण एकांगी हैं तथा वे केवल एक विशेषता को स्पष्ट करते हैं। व्यक्तित्व अनेक विशेषताओं का समन्वित रूप होता है।

व्यक्तित्व शब्द की परिभाषा - यहाँ पर हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं का उल्लेख कर रहे हैं -

मन, एन0एल0 - व्यक्तित्व की परिभाषा एक व्यक्ति के ढांचे, व्यवहार के तरीकों, रुचियों, मनोवृत्तियों, सामान्यों, योग्यताओं और अभिरुचियों के सर्वाधिक विशिष्ट संगठन के रूप में की जा सकती है।

आल्पोर्ट, जी0डब्ल्यू0 - व्यक्तित्व मनोदैविक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है जो पर्यावरण के प्रति होने वाले उसके अपूर्व अनुकूलनों का निर्धारण करता है।

यंग, किम्बाल - अपने उद्देश्य के लिए व्यक्तित्व को कम या अधिक आदतों लक्षणों, मनोवृत्तियों, विचारों को उस समग्रता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका निर्माण बाह्य रूप में एक व्यक्ति के कार्यों तथा

प्रस्थितियों के रूप में होता है तथा आन्तरिक रूप से सम्प्रेरणाओं, उद्देश्यों तथा आत्मा के विभिन्न तत्वों से सम्बन्धित होते हैं।

लापरियर ऐण्ड फ्रान्सवर्थ - व्यक्तित्व शब्द का वैज्ञानिक प्रयोग किसी समय विशेष में किसी व्यक्ति विशेष के समाजीकरण के प्रतिफलन को दर्शाने के लिए किया जाता है। व्यक्तित्व उन सभी गुणों की समग्रता है जिन्हें व्यक्ति ने समाजीकरण द्वारा अर्जित किया है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम व्यक्तित्व को निम्न शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं -

व्यक्तित्व व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य व्यवहार के तरीके, रुचियाँ, अभिवृत्तियाँ, योग्यतायें, क्षमतायें, आदतें, प्रेरणायें, उद्देश्य तथा शारीरिक गुण आदि के सम्मिलित योग को कहते हैं।

(4) पर्सनाल्टी शब्द की व्याख्या - पर्सनाल्टी शब्द की यदि हम व्याख्या करें तो व्यक्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

P = Psychological Development	मनोवैज्ञानिक विकास की विशेषतायें एवं गुण
E = External Adjustment	बाह्य समायोजन
R = Reservior	संग्रहालय
S = Social Qualities	सामाजिक विशेषतायें।
O = Orgnic Traits	शारीरिक गुण
N = Needs	आवश्यकतायें
A = Appearance	मुखौटा
L = Learning	ज्ञान का स्तर
I = Intelligence	बुद्धि
T = Temperament	स्वभाव
Y = Yearning	लालसा

1.4 व्यक्तित्व की विशेषतायें

व्यक्तित्व की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है -

1. यह व्यक्ति के व्यवहार का तरीका निश्चित करता है।
2. मनुष्य की रुचियाँ उसके व्यक्तित्व का अंग है।
3. व्यक्ति के दृष्टिकोण के आधार पर व्यक्तित्व में परिवर्तन आता है।
4. मनुष्य की क्षमतायें व्यक्ति की अर्जित शक्ति हैं जो उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं।
5. व्यक्ति की समायोजनात्मक शक्ति उसके व्यक्तित्व को देन है।
6. व्यक्ति के विचारों की किस्म (प्रकार) उसके व्यक्तित्व पर निर्भर होती है।

- 7.व्यक्ति की मनोवृत्तियाँ उसके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण अंग होती हैं।
8. व्यक्ति के व्यक्तित्व पर उसके सामाजिक मूल्यों का प्रभाव पड़ता है और उसकी आदतें इससे नियंत्रित होती हैं।
- 9.व्यक्तित्व विशेष से मनुष्य के स्थायी गुणों की ओर संकेत होता है।
- 10.व्यक्तित्व द्वारा परिवर्तनशील वातावरण के साथ व्यक्ति का अनुकूलन क्षमता प्रगट होती है।
- 11.व्यक्ति के शरीर की रचना तथा उसकी मानसिक विशेषतायें व्यक्तित्व में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

व्यक्तित्व के तत्व - व्यक्तित्व के अन्तर्गत निम्न तत्व विद्यमान होते हैं -

शारीरिक गुण - व्यक्ति के शरीर की लम्बाई, चौड़ाई, गठन, भार, रंग रूप, ध्वनि आदि शारीरिक गुण हैं। इन गुणों का व्यक्तित्व पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

मानसिक गुण - मानसिक गुणों के अन्तर्गत ज्ञान, भावना, इच्छा, स्वभाव, प्रवृत्ति आदि को सम्मिलित करते हैं। ज्ञान बुद्धि के आधार पर व्यक्तियों को निम्न श्रेणी में विभक्त कर सकते हैं:

अत्युत्कृष्ट	140-169	बुद्धि लब्धि
उत्कृष्ट	120-139	”
सामान्य से ऊपर	110-119	”
सामान्य	90-109	”
सामान्य से नीचा	80-89	”
सीमावर्ती	70-79	”
मूर्ख	50-69	”
मूढ़	25-49	”
जड़	0-24	”

स्वभाव के आधार पर व्यक्ति चार प्रकार के होते हैं:-

- 1.आशावादी
- 2.निराशावादी
- 3.चिड़चिड़े
- 4.अस्थिर

चरित्र भी व्यक्तित्व का एक प्रमुख अंग है। चरित्र का मूल्यांकन नैतिक मूल्यों के आधार पर तथा समाज के नियमों पर होता है। यह व्यक्ति की निर्बलता या सबलता, उच्चता या नीचता पर निर्भर नहीं होता है वरन् व्यक्ति के आत्म संयम - चाहे वह कमजोर या बलवान हो, उच्च या निम्न वर्ग का हो पर निर्भर होता है। वही व्यक्ति उच्च चरित्र वाला है जो अपने वर्तमान सुख को महान आदर्श अथवा उज्ज्वल भविष्य के लिए त्याग देता है। इस प्रकार चरित्र के आधार पर भी व्यक्तित्व को श्रेणीबद्ध कर सकते हैं।

सामाजिकता - सामाजिकता तथा विकास समूह में होता है। व्यक्ति का प्रारम्भिक जीवन परिवार में व्यतीत होता है और परिवार सामाजिक गुणों को विकसित करने का प्रमुख साधन है। सहयोग, सहानुभूति, त्याग की भावना, जनहित आदि गुण व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं।

संकल्प शक्ति - व्यक्तित्व की संकल्प शक्ति एक महत्वपूर्ण अंग है। व्यक्तित्व के निर्धारण में संकल्प शक्ति बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके द्वारा ही विचार शक्ति में वृद्धि होती है एवं व्यक्तित्व में निखार आता है। इस गुण के कारण ही गांधी जी, सुभाषचन्द्र बोस, शिवाजी तथा जवाहरलाल नेहरू आदि महान पुरुष बने।

संवेगात्मक गुण - संवेग के अन्तर्गत भाव, आवेग, तथा शारीरिक एवं दैहिक प्रतिक्रियायें सभी आती हैं। ये गुण अथवा विशेषतायें मिश्रित होकर विभिन्न श्रेणियों में प्रकट होते हैं। क्रोध, झगड़लूपन, सहानुभूति, प्रेम, भय, चिंता, सुख, हंसी आदि संवेग हैं जो परिस्थिति के आधार पर प्रकट होते हैं। व्यक्ति के संवेग व्यक्तित्व के प्रकार को स्पष्ट करते हैं। इससे व्यक्ति की प्रकृति का बोध होता है -

व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक - व्यक्तित्व पर निम्नलिखित कारकों का प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है -

1. वंशानुक्रम
2. पर्यावरण
3. प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ
4. स्नायु संस्थान
5. शारीरिक गठन
6. सम्प्रेरणायें
7. संस्कृति

संगठित व्यक्तित्व के गुण - व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप समझना तथा देखना कठिन है क्योंकि सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार इसमें अंतर आता रहता है। परन्तु सामान्य रूप से निम्नलिखित गुण संगठित व्यक्तित्व में होने आवश्यक होते हैं -

1. अच्छा स्वास्थ्य
2. सहकारिता की भावना
3. चरित्र निर्माणक सामाजिक संगठनों का सदस्य बनना
4. समाज सेवा की भावना
5. संगी साथियों के साथ अच्छा व्यवहार
6. विपरीत लिंग वाले व्यक्तियों के साथ स्वस्थ सम्बन्ध
7. हर प्रकार के शारीरिक एवं बौद्धिक कार्यों को करने के लिए तैयार रहना।
8. प्रेम की भावना
9. समायोजित स्थिति
10. अन्य व्यक्तियों के मनोभावों को समझना उनकी सराहना और उनके अहं को ठेस न पहुंचाना।

11. शिष्टाचार एवं विनय
12. सामान्य बुद्धि
13. सामान्य सांवेगिकता
14. समूह को नेतृत्व प्रदान करना तथा उसके मूल्यों में आस्था रखना।
15. न अधिक रूढ़िवादी होना और न ही अधिक अग्रगामी।
16. अपनी कमजोरियों तथा शक्तियों को समझना
17. उद्देश्य की स्पष्टता
18. व्यवहार, योग्यतायें, क्षमतायें तथा प्रवीणतायें

मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व के लक्षण - मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व तथा समाज विरोधी व्यक्तित्व उन व्यक्तिगत विशेषताओं एवं व्यावहारिक तरीकों, जिनमें व्यक्ति अंतर्व्याक्तिक सम्बन्धों में कठिनाई अनुभव करता है तथा समाज से निरन्तर संघर्ष करने के लिए बाध्य हो जाता है, को प्रदर्शित करने के लिए एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किये जाते हैं। समाज विरोधी व्यक्तित्व को मानसिक मंदता, मनोस्नायु विकृतियों तथा मनोविकृतियों की भांति वर्गीकृत नहीं कर सकते हैं क्योंकि विरोधात्मक लक्षण कई रूपों में कार्य करते हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व में सामाजिकता, नीति तथा नैतिकता का समुचित समन्वय नहीं होता है। उसमें इन विशेषताओं की कमी होती है जिसके कारण मूलरूप से मनोव्याधिकीय व्यक्ति असमाजीकृत होते हैं तथा दूसरे व्यक्तियों, समूहों एवं सामाजिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा एवं आदर नहीं रखते हैं। ऐसे व्यक्ति बुद्धिमान, मिलनसार आकर्षक, बातचीत में चतुर तथा व्यावहारिक रूप में निपुण होते हैं। ऐसे व्यक्ति भूत तथा भविष्य की चिंता न करके वर्तमान में रहकर दूसरे के सुख-दुख की चिंता नहीं करते हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व के अन्तर्गत सिद्धान्तहीन व्यापारी, भड़काने वाले वकील, नीम हकीम चिकित्सक, विकृत राजनैतिक नेता, विकृत मिथ्याभाषी ठग, नैतिक दोषी अपराधी तथा बाल अपराधी आदि आते हैं।

निम्नलिखित विशेषतायें समाज विरोधी व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती हैं -

अपूर्ण चेतन विकास तथा चिंता व अपराध भावना की कमी - समाज विरोधी या मनोव्याधिकीय व्यक्ति नैतिक मूल्यों को समझने तथा व्यावहारिक उपयोग में लाने में असफल होता है। उसके चेतन विकास तथा बुद्धि स्तर में विरोधाभास होता है इसीलिए उसे नैतिक मूर्ख कहा जाता है। वह नैतिकता को झूठ तथा धोखा समझता है। तनाव अनुभव होने पर चिंता के स्थान पर उसको दूर करने के लिए पूरा प्रयास करता है। उसके कार्य बिना सामाजिकता, नैतिकता व समयानुकूलता के होते हैं। वह अक्सर उग्र तथा आक्रामक होता है। उसमें चिंता एवं अपराध की भावना न होने के कारण किसी कार्य को करने के लिए सामाजिक मापदण्ड नहीं देखता है। जिन व्यक्तियों से वह लाभ उठा नहीं पाता है उनको घृणा की दृष्टि से देखता है।

उत्तरदायी एवं मूल प्रवृत्तियात्मक व्यवहार - मनोव्याधिकीय व्यक्ति दूसरे के हितों की बिल्कुल चिंता नहीं करता है। वह दूसरों की इच्छाओं, आवश्यकताओं, कठिनाइयों तथा अधिकारों की बिल्कुल परवाह नहीं करता है। वह अत्यधिक मिथ्याभाषी होता है तथा 'लेन-देन' में विश्वास नहीं करता है। जहाँ तक सम्भव होता है अपने हितों को हर प्रकार से पूरा करने का प्रयास करता है। वह बिना परिश्रम सोचे कार्य करता है। वह कानूनों को बिना डर के तोड़ता है। अतः इसका व्यवहार मूल प्रवृत्तियों से अधिक नियंत्रित होता है।

सहिष्णुता की कमी - समाज विरोधी व्यक्ति अपनी भागनाशा को अधिक समय तक नहीं सहन कर सकता है। वह भविष्य की चिंता नहीं करता और न ही भविष्य के सुख के लिए कोई कार्य करता है। वह वर्तमान में रहता है। बाह्य वास्तविकता का उपयोग तात्कालिक सन्तुष्टि के लिए वह करता है। वह किसी उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर पाता अतः अपने को जल्दी बदलता रहता है।

दूसरों को आकर्षित करने एवं शोषण करने की क्षमता - प्रायः समाज विरोधी या मनोविकृत व्यक्ति आकर्षक तथा व्यवहार कुशल होता है। वह दूसरे व्यक्तियों को अपनी ओर शीघ्र ही आकृष्ट कर लेता है तथा विश्वास पैदा कर लेता है जिसके कारण मित्रता अधिक सरलता से स्थापित कर लेता है। उसमें वाक्य चातुर्यता बहुत अधिक होती है जिसके कारण वह अपने उद्देश्यों को सफलता से पूरा कर लेता है।

समाज विरोधी व्यवहार का प्रक्षेपण - मनोव्याधिकीय व्यक्ति अपने समाज विरोधी व्यवहार को दूसरों पर प्रक्षेपित कर देता है। यह इस कार्य में इतना कुशल होता है कि दूसरों को इस प्रक्षेपण एवं तर्क द्वारा ही प्रभावित कर लेता है। अपने को भी इसी प्रकार संतुष्ट करता है। जिससे चिंता एवं अपराध की भावना नहीं पनपती है।

सुखद अन्तर्व्यक्तिक सम्बन्धों को बनाये रखने में कठिनाई - यद्यपिमनो व्याधिकीय व्यक्ति सम्बन्ध स्थापित करने तथा मित्रता उत्पन्न करने में अत्यन्त कुशल होते हैं परन्तु इस सम्बन्ध को अधिक समय तक स्थिर नहीं रख पाते हैं। वे उत्तरदायी, आत्मकेन्द्रित, शक्की, असहिष्णु, अभारी तथा स्वार्थी होते हैं। ये लोग परिवार के लिए भार होते हैं। वे अविश्वसनीय पति तथा पिता होते हैं।

सत्ता का तिरस्कार - समाज विरोधी व्यक्तियों के लिए सामाजिक अथवा वैधानिक कोई भी नियम व कानून अर्थहीन होता है। वे किसी भी प्रकार के नियमों का बंधन नहीं मानते हैं। उनको शिक्षा संस्थाओं एवं अन्य संस्थाओं में कठिनाई अनुभव होती है। इस कारण वे अपराधपूर्ण कार्य करते हैं परन्तु वे व्यावसायिक अपराधी नहीं होते हैं।

अनुभव से सीखने की अक्षमता - मनोव्याधिकीय विकृत व्यक्ति अपने अनुभव से सीखने में असमर्थ होता है। उसको चाहे जितनी बार दण्ड दिया जाय, वह एक ही प्रकार का व्यवहार करता है।

उपलिखित अधिकांश विशेषतायें मनोस्नायु विकृतियों तथा अन्य प्रतिकूलित एवं असामाजिक व्यक्तियों के व्यवहारों में भी पायी जाती है। परन्तु मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व में ये अत्यधिक प्रभावशाली होती हैं तथा अन्य मनोव्याधिकीय लक्षणों के साथ प्रकट होती हैं। उदाहरण के लिए अधिकांश मनोस्नायु विकृत व्यक्ति चिंता से त्रस्त रहते हैं तथा परिस्थिति से दूर भागने का प्रयत्न करते हैं जबकि सामाजिक विरोधी व्यक्ति अपनी मूल प्रेरणाओं को बिना भय एवं चिंता के पूरा करने का प्रयत्न करता है। उसको परिणाम की कोई चिंता नहीं होती है।

क्लीकले ने मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व के लिए 16 कारकों को आवश्यक बताया है:

1. बनावटी आकर्षक तथा अच्छी बुद्धि
2. व्यामोह तथा अन्य अतार्किक विचारों की अनुपस्थिति
3. अधीरता या मनोस्नायुविक विचारों की अनुपस्थिति
4. अविश्वसनीयता
5. असत्यभाषितों एवं अकर्तव्य परायणता
6. पश्चाताप एवं लज्जा की कमी
7. अपर्याप्त रूप से सम्प्रेरित सामाजिक विरोधी व्यवहार
8. क्रम निर्णय शक्ति तथा अनुभव से सीखने की असफलता।

9. व्याधिकीय आत्मकेन्द्रिता तथा प्यार करने की अक्षमता।
10. प्रमुख भावात्मक प्रतिक्रियाओं में सामान्य कमी
11. अन्तर्दृष्टि की विशेष कमी
12. सामान्य अन्तर्व्यक्तिक सम्बन्धों में प्रत्युक्त विहीनता
13. नशे की अवस्था या बिना नशे की अवस्था में विचित्र तथा अप्रत्याशित व्यवहार।
14. आत्म हत्या की मूल प्रवृत्तियाँ, परन्तु वे बहुत कम व्यवहार में लायी जाती हैं।
15. लैंगिक जीवन अव्यक्तिगत तुच्छ तथज्ञा कम एकीकृत।\
16. किसी भी जीवन शैली को चलाने में असफल

ग्रे तथा हचिसन ने 1000 कनाडा के मनोविकार चिकित्सकों की राय मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व के व्यावहारिक लक्षणों के सम्बन्ध में ज्ञात करनी चाही। उत्तरदाताओं ने निम्नलिखित 10 लक्षणों को अधिक महत्वपूर्ण बताया -

1. ये व्यक्ति अनुभव से ज्ञान नहीं उठा सकते,
2. इनमें उत्तरदायित्व की कमी होती है,
3. अर्थपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में अयोग्य होते हैं,
4. मूलप्रवृत्तियों पर नियंत्रण की कमी होती है,
5. नैतिक दृष्टिकोण की कमी होती है,
6. स्वाभाविक सामाजिक विरोधी होते हैं,
7. दण्ड व्यवहार में परिवर्तन नहीं लाता है,
8. सांवेगिक रूप से अपरिपक्व होते हैं,
9. अपराधबोध अनुभव करने में अयोग्य होते हैं,
10. आत्म केन्द्रित होते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनोव्याधिकीय व्यक्ति एक असमाजीकृत व्यक्ति होता है। वह आचरण के नियमों को अस्वीकृत करता है जिसके कारण समाज से संघर्ष करता है। उसमें किसी भी प्रकार की समूह, मित्र अथवा मूल्य अवस्था के प्रति कोई श्रद्धा नहीं होती है। वह स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित, मूल प्रवृत्तियों से नियंत्रित तथा अनुभव से सीखने में असमर्थ होता है। वह रुकावट को सहन नहीं कर पाता है। वह जिस वस्तु को चाहता है परन्तु चाहता है तथा परन्तु कार्यवाही करता है।

(10) मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व का वर्गीकरण - ऐसे बहुत से समाज विरोधी कार्य होते हैं जो मनोव्याधिकीय व्यक्तियों द्वारा किये जाते हैं तथा जिनके आधार पर उन्हें अनेक वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। इसके प्रकारों का वर्णन इमाइल क्रेमलिन ने अपनी पुस्तक टेवस्ट बुक आफ साइक्याट्री में किया है। (1) उत्तेजना (2) अस्थिर (3) मूल प्रवृत्त्यात्मक (4) सनकी (5) मिथ्याभाषी तथा ठग (6) सामाजिक विरोधी (7) झगड़ालू।

सामान्यतः निम्न प्रकारों में मनोव्याधिकी व्यक्तित्व को वर्गीकृत कर सकते हैं -

आक्रामक - इन व्यक्तियों की विशेषता होती है कि वे सदैव आक्रामक दृष्टिकोण एवं व्यवहार रखते हैं। इसलिए साधारण बात पर भी झगड़ा कर लेते हैं तथा आक्रामक रूख अपनाते हैं। ऐसे व्यक्ति आक्रामक संवेग में भयानक से भयानक कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों में आक्रामक संवेग अचानक उत्पन्न हो जाते हैं अतः ऐसे व्यक्ति अधिक खतरनाक होते हैं।

अस्थिर - ऐसे व्यक्ति किसी भी कार्य एवं व्यवहार पर स्थिर नहीं रह पाते हैं। उनके व्यक्तित्व में अस्थिरता की प्रमुख विशेषता होती है। कब किस प्रकार का और क्या व्यवहार करेगा, वह स्वयं भी नहीं जानता है।

सनकी - कुछ व्यक्ति बहुत सनकी तथा झक्की होते हैं। आन्तरिक जीवन में अस्तव्यस्तता के कारण इनके स्वभाव में सनकी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्ति बड़ी कठिनाई से किसी बात पर विश्वास कर पाते हैं।

मूल प्रवृत्त्यात्मक - कुछ मनोव्याधिकीय व्यक्ति ऐसे होते हैं जो मूल प्रवृत्तियों पर नियंत्रण नहीं रख पाते हैं। जब जो मूलप्रवृत्ति उत्पन्न होती है वे उसकी संतुष्टि के लिए तुरन्त प्रयास करते हैं तथा रुकावट को सहन नहीं कर पाते।

झगड़ालू प्रवृत्ति - इस प्रकार के व्यक्तियों में उदण्डता एवं झगड़ालू प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। वे बिना परिणाम सोचे संघर्ष के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि दूसरा व्यक्ति झगड़ा नहीं करना चाहता है तब भी जान-बूझकर ऐसा कार्य करते हैं जिससे झगड़ा या लड़ाई होने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मुकदमेबाजी पर भी ऐसे व्यक्ति उतारू हो जाते हैं।

मिथ्या भाषी - ऐसे व्यक्ति बिना किसी कारण एवं अर्थ के झूठ बोलते हैं। झूठ बोलने की उनकी एक प्रकार की आदत पड़ जाती है। उनको इस प्रकार के व्यवहार से न तो कोई लाभ होता है और न किसी उद्देश्य की पूर्ति होती है परन्तु फिर भी वे झूठ बोलते हैं।

ठग - ऐसे व्यक्तियों को दूसरों को धोखा देने की आदत पड़ जाती है। वे काल्पनिक व्यवहार को वास्तविकता में परिणत कर देते हैं तथा झूठ को सत्य स्थापित करने में कुशल होते हैं।

संवेग नियंत्रण हीन अपराधी - ऐसे व्यक्ति हत्या, लूट, डाका, चोरी तथा गैर कानूनी कार्य उस समय करते हैं जब संवेग तीव्र होता है वे इन पर नियंत्रण नहीं रख पाते हैं यद्यपि ज्ञान की कमी नहीं होती है।

1.6 व्यक्तित्व के प्रकार

व्यक्तित्व के प्रकार - प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। यह भिन्नता चाहे कम हो या अधिक परन्तु बिल्कुल समानता का होना असम्भव है। परन्तु भिन्नता के साथ-साथ किसी स्तर में समानता भी अवश्य पाई जाती है। इस समानता के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया जाता है।

1. कफ प्रधान - ये लोग धीमे, निर्बल तथा उत्तेजनाहीन होते हैं।
2. बात प्रधान - ये लोग शीघ्र काम करते हैं, तथा प्रसन्न रहते हैं।
3. पित्त प्रधान - ये लोग निराशावादी होते हैं।

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार - भारतीय मनोविज्ञान ने 3 प्रकार के व्यक्तित्व बताये हैं

- i. सात्विक प्रकृति
- ii. राजसी प्रकृति
- iii. तामसी प्रकृति

हिपोक्रेट्स और बाद गालिन ने शारीरिक द्रव्यों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। इसके अनुसार 4 प्रकार के व्यक्ति होते हैं -

1. कम वाले - ये लोग धीमे कार्य करते हैं।
2. कालपित्त वाले - ये लोग निराशावादी होते हैं।

3. पीला पित्त वाले - शीघ्र ही क्रोधित होते हैं।
4. रुधिर वाले - आशावादी तथा प्रसन्नचित रहते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान के आधार पर व्यक्तित्व को 3 वर्गों में विभक्त किया गया है:

भाव प्रधान व्यक्ति - इस प्रकार के व्यक्ति वे होते हैं जिनमें भावना की प्रेरणा प्रधान होती है। या भावना की प्रेरणा से आवेग में आकर कोई भी काम कर सकते हैं।

क्रिया प्रधान व्यक्ति - इस प्रकार के व्यक्ति सदैव कोई न कोई रचनात्मक कार्य करते हैं तथा इनकी इच्छा सदैव सकारात्मक होती है। यद्यपि ये लोग मानसिक कार्यों को कुशलता से नहीं कर पाते हैं, परन्तु शारीरिक परिश्रम वाले कार्यों को कुशलतापूर्वक करते हैं। अभियन्ता, पहलवान, खिलाड़ी, सैनिक आदि इस वर्ग में आते हैं -

विचार प्रधान व्यक्ति - यह वर्गीकरण विशेष महत्वपूर्ण है तथा मनोवैज्ञानिक मूल्यों के आधार पर स्पेन्सर ने निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है -

1. ज्ञानात्मक
2. सौन्दर्यात्मक
3. आर्थिक
4. राजनैतिक
5. सामाजिक

शारीरिक दृष्टिकोण के आधार पर वरनर में वर्गीकरण प्रस्तुत किया है -

- i. स्वस्थ
- ii. अविकसित
- iii. अपरिपुष्ट
- iv. स्नायुविक
- v. अंगरहित
- vi. सुस्त तथा पिछड़े
- vii. मिर्गीग्रस्त
- viii. स्नायु रोगी

कल्पना या विचार के आधार पर थार्न डाइक ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है -

1. सूक्ष्म विचारक - गणित तथा कानून में रूचि रखते हैं
2. स्थूल विचारक - क्रिया पर विशेष बल देते हैं।
3. प्रत्यक्ष विचारक - संख्या, संकेत तथा शब्दों पर विचार रखते हैं।

शेल्डन ने शरीर रचना आधार पर निम्न वर्गीकरण बताया है -

1. कोमल तथा गोल शरीर वाले - इस प्रकार के व्यक्ति अत्यन्त कोमल किन्तु देखने में मोटे लगते हैं। उनकी पाचनक्रिया अविकसित होती है।
2. हृष्ट पुष्ट - ये लोग शारीरिक रूप से शक्तिशाली होते हैं।
3. शक्तिहीन - शक्तिहीन होते हैं, हड्डियाँ पतली तथा लम्बी होती हैं। परन्तु उत्तेजक अधिक होते हैं।

क्रेशनर ने भी 3 प्रकार बताये है -

एथेलेटिक टाइप - ऐसे व्यक्तियों का शरीर सबल तथा मजबूत होता है। सीना चौड़ा, लम्बा, गोल चेहरा एवं हाथ पैर लम्बे होते हैं।

- i. अस्थेनिक टाइप - ऐसे व्यक्तियों के हाथ पैर लम्बे, चेहरा लम्बा तथा सीता चपटा होता है।
- ii. डिस प्लास्टिक - ऐसे लोग गोल मटोल, तोंदुल तथा नाटे होते हैं।

युंग (कार्ल) ने सम्पूर्ण व्यक्तियों को दो भागों में विभाजित किया है -

1. बहिर्मुखी
2. अन्तर्मुखी

बहिर्मुखी व्यक्तियों की निम्नलिखित विशेषतायें होती है -

1. रूचि बाह्य जगत में अधिक होती है।
2. कार्य करने की दृढ़ इच्छा होती है।
3. बहादुरी के कार्यों में रूचि रखते हैं।
4. शासन करने का स्वभाव होता है।
5. शीघ्र न घबड़ाने वाले होते हैं।
6. शान्त एवं आशावादी होते हैं।
7. ध्यान बाह्य समाज पर होने के कारण आन्तरिक जीवन कष्टमय होता है।
8. उन गुणों को अपनाना पसंद करते हैं जिन्हें अधिकांश लोग पसंद करते हैं।
9. धारा प्रवाह बोलने वाले होते हैं।
10. मित्रों जैसा व्यवहार करते हैं।
11. अपनी पीड़ा की कम चिन्ता करते हैं।

अन्तर्मुखी व्यक्तियों की निम्नलिखित विशेषतायें होती है -

1. कम बोलते हैं।
2. पुस्तकें अधिक पढ़ते हैं।
3. आज्ञाकारी होते हैं।
4. शीघ्र घबड़ाने वाले होते हैं।
5. अस्थिर स्वभाव वाले होते हैं।
6. आत्म चिन्तन में अधिक रूचि रखते हैं।
7. कम लोक प्रिय होते हैं।
8. चिन्ताग्रस्त रहते हैं।
9. अपने भावों को अपने तक सीमित रखते हैं।
10. अपनी वस्तुओं तथा कष्टों के प्रति सजग रहते हैं।
11. शीघ्र घबड़ाने वाले होते हैं।

1.7 सारांश

सारांश के रूप में प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत व्यक्तित्व के अर्थ, अवधारणा तथा उसकी विशेषताओं को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ-साथ व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों पर तथा उनके विभिन्न अयामों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

1.8 अभ्यासार्थ

- i. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं ?
- ii. व्यक्तित्व की अवधारणा पर प्रकाश डालिए ?
- iii. व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
- iv. व्यक्तित्व के विभिन्न तत्वों का वर्णन कीजिए।
- v. व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों को समझाइये।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

डीसिकों पी जॉन-द साइकोलोजी ऑफ लर्निंग एण्ड इन्स्ट्रक्शन, नई दिल्ली, 1968

गुप्ता, एस.पी., आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, धारदा पब्लिकेशन, इलाहाबाद उत्तर प्रदेश

हाॅल, सी.एस. एण्ड लिन्डजे, दि थ्योरीज आॅफ पर्सनैलिटी: बिले, न्यूयार्क 1957

मैस्लो, ए.एच., मोटिवेशन एण्ड पर्सनैलिटी, हार्वर एण्ड रो, न्यूयार्क, 1954

व्यक्तित्व के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 व्यक्तित्व का सैद्धान्तिक अर्थ

2.3 सारांश

2.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक अर्थ को जान सकेंगे।
 2. व्यक्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।
-

2.1 प्रस्तावना

सामान्य रूप से व्यक्तित्व मानसिक या मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक तत्वों के तंत्रों का एक ऐसा गठन है जो आपस में अंतःक्रिया करते हैं। इस मनोवैज्ञानिक तंत्र को समझने हेतु कई मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया है व्यक्तियों की वे विशेषतायें जो दूसरों को प्रभावित करने में सहायता करती हैं, व्यक्तित्व के सिद्धान्तों के अन्तर्गत आती हैं।

2.2 व्यक्तित्व के सिद्धान्त

व्यक्तित्व की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इनमें से अधिकांश सिद्धान्तों की चर्चा व्यक्तित्व उपागम में की जा चुकी है। व्यक्तित्व के कुछ सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-

1. शरीर रचना सिद्धान्त
2. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त
3. आवश्यकता सिद्धान्त
4. विशेष सिद्धान्त
5. क्षेत्र सिद्धान्त

6. गणितीय या कारक सिद्धान्त

7. अधिगम सिद्धान्त

8. सर्वांगीण सिद्धान्त

1. शरीर रचना सिद्धान्त

व्यक्तित्व के शरीर रचना सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले मनोवैज्ञानिकों में हिप्पोक्रेट्स, गेलेन, क्रैश्मर और शेल्डन प्रमुख हैं।

ईसा से 400 वर्ष पूर्व यूनान के दार्शनिक 'हिप्पोक्रेट्स' ने 'मानव की प्रकृति' ग्रन्थ लिखा था इसमें उन्होंने मानव की प्रकृति और उसके स्वभाव के विषय में बहुत कुछ लिखा है जो मनोचिकित्साशास्त्र की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इनके अनुसार मनुष्य के शरीर में चार प्रकार के द्रव (ह्यूमर) होते हैं। ये द्रव हैं - पीला, पित्त, काला पित्त, कफ और रक्त। जब इन द्रवों के अनुपात में विषमता उत्पन्न होती है तब मनुष्य रोगग्रस्त हो जाता है। इन्हीं चार द्रवों के अनुपात में विषमता उत्पन्न होती है तब मनुष्य रोगग्रस्त हो जाता है। इन्हीं चार द्रवों से ही मानव की चित्त प्रकृति का निर्माण होता है। हिप्पोक्रेटीज की भांति गेलेन ने मानव चित्त प्रकृति के चार प्रकार बताए हैं -

1. उत्साही चित्त प्रकृति
2. श्लेष्मिक चित्त प्रकृति
3. विषादी चित्त प्रकृति
4. कोपशील चित्त प्रकृति

क्रैश्मर ने शारीरिक रचना और चित्त प्रकृति के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार निर्धारित किये हैं -

1. कृशकाय प्रकार
2. पुष्टकाया प्रकार
3. तुदिल प्रकार
4. मिश्रकाय प्रकार

शेल्डन ने शरीर संरचना के तीन तत्वों को प्रधानता दी है -

1. स्थूलकाय अथवा गोलाकृति
2. मध्यकाय अथवा आयताकृति
3. लम्बकाय अथवा लम्बाकृति

स्थूलकाय अथवा गोलाकृति -

इस तरह के शरीर व्यक्ति का व्यक्तित्व अन्तरांग प्रधान होता है। ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति आराम पसन्द, भोजन प्रिय, शौकीन मिजाज, परम्परावादी, सहनशील, सामाजिक तथा हंसमुख प्रकृति के होते हैं। इनसे दूसरों का दुख देखा नहीं जाता है। दयालु प्रकृति के होते हैं। इनके मित्रों की संख्या अधिक होती है। ये लोग रहस्य और गोपनीय बातें छिपा नहीं पाते हैं।

मध्यकाय अथवा आयताकृति -

इस आकृति वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व को शेल्डन ने कायप्रधान कहा है। ऐसे व्यक्ति प्रायः रोमांच प्रिय, जोशीले, प्रभुत्ववादी, उद्देश्यकेन्द्रित तथा क्रोधित प्रकृति के होते हैं। ये लोग जोखिम लेना पसन्द करते हैं।

लम्बकाय अथवा लम्बाकृति -

ऐसे शरीर वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व को शोल्डन ने प्रमस्तिष्क प्रधान बताया है। ऐसे व्यक्ति प्रायः एकान्तप्रिय, अल्पनिद्रा वाले, एकाकी, जल्दी थकने वाले, गुमसुम, विचारशील तथा निष्ठुर प्रकृति के होते हैं।

2. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक 'फ्रायड' हैं। इन्होंने व्यक्तित्व की संरचना में इदम् अहम् और पराहम् अथवा अत्यहम् को प्रमुख स्थान दिया है। इदम् का सम्बन्ध आनुवांशिकता से है। व्यक्तित्व की सभी मनोवृत्तियाँ जिनका सम्बन्ध शरीर की बनावट से हैं, इदम् से प्रेरित होती है। यह मानव मन का अचेतन भाग है।

सामान्य रूप से व्यक्ति का 'मैं' ही फ्रायड की शब्दावली में अहं है। इसका विकास इदम् से ही होता है। इदम् का वह अंश जो बाह्य संसार के सम्पर्क में आता है, कालान्तर में अनुभव प्राप्त करके अहम् का स्वरूप निर्मित होता है।

फ्रायड के अनुसार अत्यहम् अथवा पराहम् बाल्यकाल से विकसित होने लगता है। सामाजीकरण के माध्यम से बालक अपने समाज के नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों को अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेता है। सामान्यतः अन्तःकरण का प्रयोग उसी तथ्य को व्यक्त करने के लिये करते हैं जिसे फ्रायड ने अत्यहम् अथवा पराहम् का नाम दिया है। इदम् अहम् और अत्यहम् अथवा पराहम् के स्वरूप को देखा जा सकता है।

जिस प्रकार से शरीर की गतिशीलता शारीरिक ऊर्जा पर निर्भर है उसी प्रकार व्यक्तित्व की गतिशीलता मनः ऊर्जा पर निर्भर करती है। शारीरिक ऊर्जा और मनः ऊर्जा के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ इदम् और उससे सम्बन्धित मूलप्रवृत्तियाँ करती हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्त कार्यों में जिस मनः ऊर्जा की आवश्यकता होती है उसका स्रोत मूल प्रवृत्तियाँ हैं। फ्रायड ने लिबिडो शब्द का प्रयोग कामवासना की मूलप्रवृत्ति के संदर्भ में किया है। लिबिडो का कार्य प्रेम और आनन्द की खोज में जीवन को आगे बढ़ाने से है और इन सभी कार्यों में लिबिडो का होना आवश्यक है। फ्रायड ने दुःश्चिन्ता को मनोविकारों का प्रमुख कारण माना है। फ्रायड माना है। फ्रायड के अनुसार जब लैंगिक वासना का दमन किया जाता है तब दुःश्चिन्ता उत्पन्न होती है। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व का विकास चार प्रकार के तनावों पर निर्भर करता है। पहले प्रकार का तनाव शारीरिक विकास की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है। दूसरे प्रकार के तनाव का स्रोत कुण्ठाएँ हैं। तीसरे प्रकार के तनाव व्यक्ति के आन्तरिक द्वन्दों से प्रेरित होते हैं। चौथे प्रकार का तनाव व्यक्ति में संकट के समय में उत्पन्न होता है। इन सभी प्रकार के तनावों से मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति कुछ उपायों को काम में लाता है जिन्हें फ्रायड ने रक्षात्मक युक्तियाँ कहा है। फ्रायड के अनुसार मन के तीन भाग हैं - अचेतन, अवचेतन तथा चेतन। चेतन मन का सम्बन्ध व्यक्ति की जाग्रत अवस्था से है। जब व्यक्ति सचेत होकर कोई कार्य करता है तब उसका चेतन मन सक्रिय रहता है। चेतन मन के अतिरिक्त जो कुछ भी है वह अचेतन है। चेतन और अचेतन मन के बीच अवचेतन मन की स्थिति है इसी अवचेतन मन को सामान्य मनोविज्ञान में स्मृति कहते हैं। जब अवचेतन मन की कोई इच्छा अभिव्यक्त होना चाहती है तब वह पहले अचेतन क्षेत्र में आती है। अवचेतन मन में स्थित वातावरण अथवा इच्छा आवश्यकतानुसार स्मरण की जा सकती है। जब अचेतन मन के अनुभव चेतन मन में आते हैं तब व्यक्ति को उसकी चेतना होती है इस प्रकार फ्रायड ने अचेतन अनुभव के चेतन होने तक की क्षमता को अवचेतन मन से सम्बन्धित माना है। इसी प्रकार व्यक्तित्व विकास को इन्होंने तीन अवस्थाओं में विभाजित किया है - शैशविक, अव्यक्त और कैशोर्या। फ्रायड ने शैशविक अवस्था को अत्यधिक महत्व दिया है इसकी अवधि 5 वर्ष से 6 वर्ष की होती है। इस अवस्था में जीवन को जैसे अनुभव प्राप्त होते हैं उनसे उसका प्रौढ़ व्यक्तित्व प्रभावित होता है। इस तरह से फ्रायड ने

व्यक्तित्व को इदम्, अहम् और पराहम् के मध्य समायोजन का परिणाम माना है। इसके बारे में विस्तृत चर्चा मनोविश्लेषणात्मक उपागम में की जा चुकी है।

3. आवश्यकता सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हेनरी हैं। इन्होंने व्यक्तित्व के जैविक पक्ष को अत्यधिक महत्व दिया है। जिसे उन्होंने व्यक्ति विज्ञान कहा है। इनका प्रसिद्ध कथन है कि - “बिना मस्तिष्क के व्यक्तित्व नहीं” मरे के अनुसार - “व्यक्तित्व उन प्रकार्यात्मक रूपों और शक्तियों की निरन्तरता है जो संगठित प्रबल प्रक्रियाओं और व्यक्त व्यवहारों के माध्यम से जीवन और मृत्यु पर्यन्त अभिव्यक्त होता रहता है।” उनका यह भी मानना है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से उत्पन्न तनावों से प्रभावित होता है। व्यक्तित्व की संरचना मर्मे उन उपायों का भी महत्व है जो कि विभिन्न आवश्यकताओं और लक्ष्यों में क्रम निर्धारण करते हैं। क्रमनिर्धारण के संदर्भ में मरे ने क्रमसूचक का उल्लेख किया है जिसे उन्होंने एक उच्चतर मानसिक प्रक्रिया माना है। इनके अनुसार व्यक्तित्व परिवर्तनशील है और इसका विकास जीवन पर्यन्त घटित होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित है। इन्होंने अभिप्रेरणा का उल्लेख करते समय आवश्यकताओं पर अधिक बल दिया है। व्यक्ति की जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ अनेक प्रकार की हैं जिनका ज्ञान हमें तब होता है जबकि निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देते हैं -

1. व्यवहार का प्रभाव
2. किये गये व्यवहार का प्रकार
3. उद्दीपन वर्ग की वस्तुओं का चुनाव और अनेक प्रति अनुक्रिया
4. किसी विशेष भाव या भावना की अभिव्यक्ति
5. इच्छानुसार कार्य होने पर संतोष अथवा न होने पर निराशा की अभिव्यक्ति।

जब कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार कार्य एवं व्यवहार करने लगता है तब उसे सामाजिक नियमों का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। ये सामाजिक नियम इस प्रकार के दबाव हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को पूरी छूट नहीं देते। मरे ने दबावों को दो वर्गों में रखा है। पहले वर्ग में ऐसे दबाव हैं जो कि व्यक्ति अथवा वस्तु के स्वरूप एवं प्रकृति में पाये जाते हैं इन्हें अल्फा दबाव कहते हैं। पुनः एक व्यक्ति जब अपने पर्यावरण की वस्तुओं एवं समाज के विषय में दबाव की धारणा बनाता है। इस प्रकार के दबाव को बीटा दबाव कहते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने हेनरी मरे द्वारा प्रतिपादित आवश्यकता के सिद्धान्त की आलोचना की है। उनके अनुसार आवश्यकताओं में अपरे आप ऐसे कोई शक्ति नहीं होती जो उसे क्रियाशील बनाए इसीलिए बाद में हेनरी मरे ने कर्षण शक्ति और उससे सम्बन्धित मूल्य की संकल्पना प्रस्तुत की। व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त व्यक्तित्व का जो इतिहास है वही वास्तव में व्यक्तित्व है व्यक्तित्व के विकास पर जैविक निर्धारकों के साथ-साथ सांस्कृतिक निर्धारकों का भी प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में हेनरी मरे का यह कथन ध्यान में रखने योग्य है -

“प्रत्येक व्यक्ति, सभी व्यक्तियों के समान हैं,

कुछ व्यक्तियों में समान हैं, किसी के समान नहीं है।”

इस प्रकार से हेनरी मरे का व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकता सिद्धान्त में सभी निर्धारक मिलकर कार्य करते हैं। व्यक्तित्व की गत्यात्मकता के संदर्भ में विभिन्न आवश्यकताएँ, दबावों, कर्षण शक्तियों, मूल्य ये सभी प्रकार के निर्धारक एक दूसरे से गुंथे होते हैं।

4. विशेषक अथवा शील सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक गार्डन डब्ल्यू0 आलपोर्ट हैं। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक व्यक्तित्व 1937 में प्रकाशित हुई। जिससे उन्होंने व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोशारीरिक पद्धतियों का वह आन्तरिक गत्यात्मक संगठन है जो कि पर्यावरण में उसके अनन्य समायोजन को निर्धारित करता है। आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व का वही सिद्धान्त उपयोगी एवं सार्थक है जो कि रचना में केन्द्रित होता है।

- मानव व्यक्तित्व शरीर रचना में केन्द्रित होता है।
- मानव अवयव संस्थान में अनेक वस्तुएं हैं जो कि व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं।
- मानव व्यक्तित्व में अभिप्रेरणा का सम्बन्ध व्यक्तित्व की वर्तमान संरचना एवं प्रकार्य से होता है न कि यह पहले से पायी जाने वाली किसी शक्ति का विकासित रूप है।
- व्यक्तित्व के अध्ययन में विश्लेषण के लिए ऐसी इकाईयों को लिया जाये जो उसके जीवन्त संश्लेषण को बनाये रखे।
- स्वचेतना के तथ्य की ओर व्यक्तित्व के अध्ययन में समुचित ध्यान दिया जाये।

आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के स्वस्थ एवं गत्यात्मक पक्ष पर बल दिया है। इनके अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व में निहित 'अनन्यता' बहुत महत्वपूर्ण है। इन्होंने व्यक्ति के सिद्धान्त में व्यक्ति और समष्टि दोनों के बीच एक प्रकार का समन्वय स्थापित किया है। इन्होंने व्यक्ति के विशेषकों को भी महत्वपूर्ण माना है जो व्यवहार और कार्य से सम्बन्धित हैं। आलपोर्ट के अनुसार विशेषक एक प्रकार की निर्णायक प्रवृत्ति है और वह बहुत कुछ आदत तथा अभिवृत्ति के समान है। आलपोर्ट के अनुसार आदत और विशेषक में अन्तर यह है कि आदत से हमारा तात्पर्य एक ऐसे व्यवहार से होता है जिसमें कि किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता जो एक ही रूप में बार-बार किया जा सकता है। लेकिन विशेषकों का विकास विभिन्न प्रकार की आदतों के सम्मिश्रण से होता है। इसी प्रकार उन्होंने अभिवृत्तियाँ और विशेषकों के बीच भी अन्तर बताया है। अभिवृत्ति का सम्बन्ध एक विशेष वस्तु अथवा विचार से होता है लेकिन विशेषक में ऐसी कोई बात नहीं पायी जाती। अभिवृत्तियाँ विशेष और सामान्य दोनों हो सकती हैं लेकिन विशेषक केवल सामान्य होते हैं। अभिवृत्तियाँ या तो अनुकूल होती हैं या प्रतिकूल लेकिन विशेषकों में ऐसी कोई बात नहीं पायी जाती हैं।

व्यक्तित्व के अध्ययन में आलपोर्ट ने जीवन इतिहास विधि को बहुत उपयोगी माना है। उनके अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्यक् अध्ययन जीवन इतिहास विधि से हो सकता है। इन्होंने व्यक्तित्व सिद्धान्त में 'स्व' के स्वरूप और विस्तार को जो केन्द्रीय महत्व दिया है। वह अपने आप में अनुपम हैं। परिपक्व व्यक्तित्व के संदर्भ में 'स्व' विस्तार एवं आत्म-स्पष्टीकरण जैसी संकल्पनाओं के द्वारा व्यक्ति के विकास की सम्भावनाएं बहुत कुछ हैं और इनका लक्ष्य आध्यात्मिक आयाम से जुड़ा है।

5. क्षेत्र सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक कुर्ट लेविन है। इन्होंने भौतिक और गणित से क्षेत्र सिद्धान्त को लेकर मनोविज्ञान में स्थान दिया है। इनके द्वारा प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक विचारधारा को सांस्थितिक मनोविज्ञान भी कहते हैं। व्यक्तित्व सम्बन्धी क्षेत्र सिद्धान्त की व्याख्या करके कुर्ट लेविन ने तीन बातों पर अत्यधिक बल दिया है -

व्यवहार उस क्षेत्र का प्रकार्य है जो कि व्यवहार के समय स्थित होता है।

सम्पूर्ण स्थिति को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण आरम्भ किया जाता है। क्योंकि उस स्थिति के विभिन्न अंग होते हैं और उसी से मिलकर पूर्ण बनता है। यथार्थ परिस्थिति में यथार्थ व्यक्ति का स्पष्टीकरण गणितीय आधार पर किया जा सकता है।

व्यक्तित्व की गत्यात्मकता को स्पष्ट करने के लिए कुर्ट लेविन निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है – सदिश, कर्षण शक्ति, आवश्यकता, तनाव, विभेदन, संतुलन तथा असंतुलन, प्रतिगम तथा पश्चगमन, अवरोध और घेरा, संचलन और तरलता, द्वन्द्व

व्यक्तित्व की गत्यात्मकता एवं समायोजन की दृष्टि से द्वन्द्व की संकल्पना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। लेविन के अनुसार द्वन्द्व तीन प्रकार के होते हैं -

- i. उपागम-उपागम द्वन्द्व
- ii. परिहार-परिहार द्वन्द्व
- iii. उपागम-परिहार द्वन्द्व

लेविन ने इन द्वन्द्वों से सम्बन्धित निम्नलिखित तीन दशाओं का उल्लेख किया है -

- पहली दशा में व्यक्ति दो विरोधी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं से ग्रस्त होता है।
- दूसरी दशा में व्यक्ति वस्तु को प्राप्त करना चाहता है तथा उसके बचने की इच्छा भी करता है।
- तीसरी दशा में व्यक्ति ऐसी दो परिस्थितियों के मध्य होता है जिसमें वह इन दोनों से बचना चाहता है।

व्यक्तित्व के स्वरूप को लेविन ने गेस्टाल्ट के आधार पर व्यक्त किया है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन देश के जो विभिन्न प्रदेश हैं उन्हीं से मिलकर बने हैं। लेकिन व्यक्ति अपने मनोवैज्ञानिक पर्यावरण से एक जार्डन वक्र के आधार पर अलग रहता है। वह वक्र जो अपने को कहीं पर काटता नहीं और घूमकर बन्द हो जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिक हाल तथा लिंगले ने लेविन के सिद्धान्त की आलोचना की है। इनके अनुसार व्यक्तित्व के विकास का सिद्धान्त विभिन्न अवस्थाओं की ओर ध्यान नहीं देता है क्योंकि लेविन विकास को एक सतत् प्रक्रिया मानते हैं। इसलिए वह सम्भव नहीं है कि विकास की विभिन्न अवस्थाओं को अलग-अलग विभाजित किया जा सके। लेकिन लेविनने यह स्वीकार किया है कि शैशव काल में ऐसे परिवर्तन होते हैं जो व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। (इसके बारे में विस्तृत चर्चा क्षेत्र उपागम में की जा चुकी है।)

6. गणितीय या कारक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक कैटल और आइजेन्क हैं। इन्होंने आँकड़ों के आधार पर तथा गणितीय एवं कारक विश्लेषण की प्रक्रिया को अपनाते हुए व्यक्तित्व के स्वरूप एवं विशेषताओं पर समुचित प्रकाश डाला है। व्यक्तित्व के मापन के द्वारा इसके विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने का श्रेय कैटल को जाता है। कैटल के अनुसार - “एक व्यक्ति का व्यक्तित्व वह है जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि किसी प्रदत्त परिस्थिति में वह व्यक्ति क्या करेगा।” कैटल ने व्यक्तित्व के स्वरूप को एक गणितीय सूत्र द्वारा प्रस्तुत किया है -

$$\text{व्यवहार} = \text{बारम्बार } \$ (\text{व्यक्तित्व } \$ \text{ परिस्थिति})$$

इस सूत्र के आधार पर कैटल ने इस बात पर बल दिया है कि व्यक्तित्व के स्वरूप का समुचित ज्ञान उसी समय हो सकता है जबकि हम किसी परिस्थिति में व्यक्ति की अन्तःक्रिया सम्बन्धी बारम्बारता को ऐसे व्यवहार के रूप में ग्रहण करें जिसका अनुमान लगाया जा सकता है। कैटल के अनुसार विशेषक व्यवहारों के सतत् पैटर्न है

जिसका आधार पर व्यक्तित्व सम्बन्धी अनुमान लगाया जा सकता है विशेषकर प्रेरित व्यवहार में एक प्रकार की निरन्तरता पायी जाती है इसलिए उनका निरीक्षण एवं परीक्षण सम्भव हैं। सांख्यिकीय विधि के आधार पर स्रोत विशेषकों के स्वरूप का निर्धारण करके कैटल ने व्यक्तित्व के अध्ययन में स्रोत विशेषकों का महत्वपूर्ण स्थान बतलाया है। इनकी ओर पूरा ध्यान दिया बिना किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता।

स्रोत विशेषकों के सम्बन्ध में कैटल का कहना है कि जिन व्यवहार एवं व्यवहार सम्बन्धी घटनाओं का सम्बन्ध परिस्थिति विशेष से होता है और जिनमें स्थायित्व की कमी होती है उन्हें बाह्य विशेषक मानना चाहिये। कैटल ने अपने सिद्धान्त में मनोविश्लेषण और अधिगम सम्बन्धी सिद्धान्तों का समावेश किया है। इनके अनुसार व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति के अर्ग एवं अंगों के समूह जिन्हें कैटल मैटाअर्ग कहते हैं में निरन्तर संशोधन होता रहता है और कालान्तर में व्यक्ति के 'स्व' की एक संरचना गठित हो जाती है।

व्यक्तित्व का सम्बन्ध संस्कृति से होता है और सांस्कृतिक नियम, रीति-रिवाज, मूल्य एवं आदर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं।

आइजेन्क के अनुसार व्यक्तित्व का स्वरूप -

आइजेन्क के अनुसार - "व्यक्तित्व जीव के वास्तविक एवं सम्भाव्य व्यवहार पैटर्न का वह कुल योग है जिसका निर्धारण आनुवांशिकता और पर्यावरण करता है। इसका आरम्भ और विकास व्यवहार पैटर्न से सम्बन्धित उन वस्तुओं के गठन तथा उनसे सम्बन्धित प्रकार्यात्मक अत्रतक्रिया के द्वारा होता है।" कारक विश्लेषण की पद्धति के द्वारा आइजेन्क ने व्यक्तित्व के तीन प्राथमिक आयाम बताये हैं जो कि निम्नलिखित हैं -

1. अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता
2. तान्त्रिकातापिता-अतान्त्रिकातापिता
3. मनस्तापिता-अमनस्तापिता

आइजेन्क के अनुसार व्यक्तित्व उपर्युक्त तीन प्रकार के होते हैं। किसी भी व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से एक प्रकार का नहीं जाना जा सकता है। जब आइजेन्क व्यक्तित्व को मध्यवर्ती चर के रूप में स्वीकार करता है तब उसकी मान्यता सम्मुख आती है कि ऐसा करने से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन अधिक सुचारू रूप से किया जा सकता है। व्यक्तित्व की संकल्पना को प्रायोगिक मनोविज्ञान एवं सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में उपयोगी बनाने की दृष्टि से आइजेन्क इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्तित्व का विश्लेषण गणितीय आधार पर किया जाना चाहिये क्योंकि व्यक्तित्व न तो अनन्य है और न सार्वभौम। आइजेन्क ने व्यक्तित्व-सम्बन्धी विधियों धारणाओं एवं संकल्पनाओं की जांच करके उनके मध्य फैले हुए अनावश्यक भ्रम जाल की कांट-छांट करके व्यक्तित्व को सुचारू स्वरूप देने का प्रयास किया है।

7. अधिगम सिद्धान्त व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक 'डोलाई तथा मिलर' हैं। इनके अनुसार व्यक्ति की आदतों का विकास अधिगम का परिणाम है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति की सभी आदतें सामाजिक अधिगम में प्रभावित होती है और इनका व्यक्ति के व्यक्तित्व से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सामाजिक अधिगम के संदर्भ में डोलाई तथा मिलर ने अन्तर्नोद का उल्लेख किया है। इनके अनुसार व्यक्ति के व्यवहार अन्तर्नोद से प्रेरित होते हैं। यह अन्तर्नोद दो प्रकार के होते हैं -

1. प्राथमिक अन्तर्नोद, 2. द्वितीयक अन्तर्नोद। डोलाई और मिलर के अनुसार व्यक्तित्व के चार प्रमुख सम्प्रत्यय हैं

- i. अन्तर्नोद
- ii. संकेत
- iii. अनुक्रिया
- iv. पुनर्बलन

सामाजिक पर्यावरण के संदर्भ में डोलार्ड तथा मिलन के अनुसार - “किसी व्यक्ति के व्यवहार के विषय में भावी कथन करना तक सरल नहीं होता जब तक कि हमें उसके सामाजिक पर्यावरण की संरचना का ज्ञान न हो जाये।” इनकी यह निश्चत धारणा है कि वास्तविक अधिगम वही है जो अन्तर्नोद एवं उद्दीपन-सम्बन्धी तनावों को कम करता है। इस प्रकार तनावों में कमी एक ओर तो अनुक्रिया का रूप लेती है और दूसरी ओर पुनर्बलन का क्योंकि यह (तनावों की कमी) सुखदायक होती है।

मावरर ने व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या करते समय अधिगम सिद्धान्त मनोविश्लेषण एवं संस्कृति की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है। उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि व्यक्तित्व को समझने में व्यक्ति के व्यवहार एवं कार्य को जो अर्थ या महत्व व्यक्ति की दृष्टि में है उसकी ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। इनके अनुसार एक व्यक्ति अनेक आदत प्रणालियों के अन्तर्गत क्रियाशील होता है और इन आदत प्रणालियों के बीच तालमेल न होने पर द्वन्द्व की उत्पत्ति होती है जो कि व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व पर उसके पर्यावरण का भी सम्यक् प्रभाव पड़ता है। इसमें एक प्रकार की समग्रता होती है जो कि अनन्य भी है।

जी मावरर ने मनोचिकित्सा और धर्म के सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया है कि भौतिकवादी अथवा जैविक उपागम मानसिक रोगों के उपचार में सहायक नहीं होता। अतः मनोचिकित्सा के क्षेत्र में मनोविश्लेषण विधि के द्वारा उपचार अधिक उपयोगी नहीं है। इनके अनुसार मनोविश्लेषण सिद्धान्त व्यक्तित्व के स्वरूप पर वास्तविक प्रकाश नहीं डालता।

संकेत अधिगम के संदर्भ में सामीप्यपतः पर आधारित पुनर्बलन को यथोचित महत्व देते हुये मावरर ने व्यक्तित्व के भावी विकास में उन संकेतों को उपयोगी माना है जो कि ऐसी आशाएं एवं आकांक्षाएं उत्पन्न करते हैं जिनके आधार पर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकता है।

सामाजिक अधिगम की परम्परा में वण्डुरा और उनके सहयोगियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके अनुसार सामाजिक अधिगम के परिप्रेक्ष्य में सभी प्रकार के मानव-व्यवहार चाहे वह अच्छे समायोजन के परिचायक हों अथवा वह किसी प्रकार के मानसिक विकास जैसे लगते हों, मूलतः अर्जित होते हैं। वण्डुरा का आग्रह है कि उसके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक अधिगम आधारित व्यक्तित्व सिद्धान्त व्यक्तित्व के वांछनीय विकास में सहायक हो सकता है। इन्होंने अपने अधिगम सिद्धान्त की सफलता के लिए सूक्ष्म को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना है। यदि लक्ष्य का स्वरूप स्पष्ट है तो अधिगम भी सुचारू रूप से होता है। (इसके विषय में पूर्व चर्चा अधिगम उपागम में किया जा चुका है।)

8. व्यक्तित्व का सर्वांगीण सिद्धान्त

व्यक्तित्व के सर्वांगीण सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का मुख्य श्रेय कुर्ट गोल्ड स्ट्राइन, अग्याल, मैसलो तथा लेकी को है। व्यक्तित्व का सर्वांगीण उपागम पूर्णता, समग्रता और एकता पर बल देता है। इसीलिए व्यक्तित्व के संदर्भ में जितनी भी अवधारणाएँ हैं वे सब आपस में सम्बन्धित हैं। मानव अपने आप में पूर्ण है। उसके व्यवहार में यह पूर्णता व्यक्त होती है। उसके समस्त कार्य और व्यवहार पूर्णता प्राप्त करने की इच्छा से होते हैं, वह प्रायः सभी लोग स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि इस सिद्धान्त से अनेक मनोवैज्ञानिक सम्बन्धित हैं।

गोल्डस्टाइन व्यक्तित्व के लिए अंगी अथवा आर्गेनिज्म शब्द का प्रयोग करते हैं। इसका कारण यह है कि व्यक्तित्व के अध्ययन में सर्वांगीण उपागम को यह महत्वपूर्ण मानते हैं। इनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में आत्मसिद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है। अंगी पर्यावरण में जीवन व्यतीत करते हुए ऐसी परिस्थितियों से गुजरता है जबकि उसके सामान्य जीवन में उतार-चढ़ाव आते हैं। इस उतार-चढ़ाव का समाना करने के लिए अंगी अथवा समीकरण की प्रक्रिया को अपनाता है। इनका मत है कि व्यक्ति आत्मसिद्धि के लिए वरीयता के आधार पर कार्य करता है। इन्होंने मानव व्यवहार की व्याख्या के संदर्भ में आकृति और भूमि की संकल्पना का प्रयोग किया है।

गोल्डस्टाइन के व्यक्तित्व सिद्धान्त में स्वायत्ता का उल्लेख परोक्ष रूप से पाया जाता है। उनका विचार है कि आत्मसिद्धि की प्रक्रिया में लीन व्यक्ति में कुछ ऐसी निहित शक्तियाँ होती हैं जो पर्यावरण सम्बन्धी दबावों का सामना पर्याप्त मात्रा में करती है। इन्हीं निहित शक्तियों के आधार पर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में एक प्रकार की स्वायत्तता स्थापित करता है। इन्होंने इस ओर भी ध्यान दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को सरल बनाने के लिए नवीनता की इच्छा रखता है। इन्होंने अपने व्यक्तित्व के सिद्धान्त में दुश्चिन्ता के महत्व को स्वीकार किया है क्योंकि यह एक प्रकार से प्रेरणा का कार्य करती है। फिर भी वह मानना होगा कि दुश्चिन्ता का सामना करने की क्षमता प्रत्येक व्यक्ति में एक समान स्तर की नहीं होती। इनकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में केवल एक ही प्रेरक है आत्मसिद्धि की प्राप्ति के लिए निरन्तर क्रियाशील रहना सर्वांगीण व्यक्ति का मुख्य लक्षण है।

अंग्याल के अनुसार व्यक्तित्व का स्वरूप एकीकृत गत्यात्मक संगठन के समान है। उसका सम्पूर्ण जीवन एक प्रक्रिया के समान है। इस प्रक्रिया में एक विशेष प्रकार का संगठन नियोजन, कार्य करने की पद्धति और इसी के साथ-साथ सर्वांगपूर्णता भी पायी जाती है। इन्होंने व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या दो प्रकार से की है - 1. वैयक्तिक दृष्टि 2. सामूहिक दृष्टि। वैयक्तिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में वह गुण होता है कि वह अपने विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है और जब व्यक्ति अपना स्थान समाज में बना लेता है और अपने को कार्य करने के लिए स्वतन्त्र एवं सुरक्षित पाता है तब उसके अन्दर एक ऐसी प्रवृत्ति विकसित होने लगती है जिसके कारण वह अपने समूह के प्रति अधिक लगाव अनुभव करता है। इतना ही नहीं, वह सहर्ष अपनी इच्छाओं को सामूहिक इच्छाओं के आगे त्याग देता है। अंग्याल के अनुसार व्यक्तित्व के तीन आयाम हैं -

1. लम्बाकार आयाम
2. प्रगतिबोधक आयाम
3. अनुप्रस्थ आयाम

व्यक्तित्व के लम्बाकार आयाम में सबसे नीचे तो अत्यन्त सतही और भौतिक पक्ष होता है। लेकिन ज्यों-ज्यों हम व्यक्तित्व के सतही और भौतिक पक्ष से आगे बढ़ते हैं और गहराई में जाते हैं तब हम उसके संवेगात्मक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि स्तरों से परिचित होते हैं। जब व्यक्ति अपनी प्रगति के लिए किसी विशेष लक्ष्य को ध्यान में रखकर प्रयास करता है तब उसके व्यक्तित्व का प्रगतिबोधक आयाम उभर कर सामने आता है। व्यक्तित्व का अनुप्रस्थ आयाम व्यक्ति के दैनिक जीवन में प्रकट होता है। वास्तव में जब वह अपने मित्रों से मिलता है या सामाजिक जीवन में लोगों से सम्पर्क स्थापित करता है जब अनुप्रस्थ आयाम की अभिव्यक्ति होती है ऐसे समय में अनुप्रस्थ आयाम के अनुसार व्यक्ति की विभिन्न सामाजिक अभिवृत्तियाँ प्रकट होती हैं और यदि इनका अध्ययन ध्यानपूर्वक किया जाये तो यह ज्ञात हो सकता है कि किसी व्यक्ति का दूसरों के प्रति क्या रवैया है। व्यक्तित्व की व्याख्या करते समय जैवमण्डल का उल्लेख किया है। इनके अनुसार जीव और पर्यावरण जब मिलकर एकीकृत हो जाते हैं तब जैवमण्डल की रचना होती है। इनका व्यक्तित्व का सिद्धान्त मनोचिकित्सा के संदर्भ में तन्त्रिका ताप के कारणों पर समुचित प्रकाश डालता है। इनके अनुसार व्यक्तित्व की अभिमुखता एक तो आत्म-नियमन की है और

दूसरी आत्म-समर्पण की। आत्म-नियमन के द्वारा व्यक्ति अपने स्वार्थ के प्रति सचेत होता है और अपनी क्षमताओं को इस प्रकार विकसित करता है कि वह परिस्थितियों पर नियन्त्रण रख सके और अपने को किसी प्रकार से हीन न समझे। अगुंयाल के अनुसार जब आत्मनियमन तथा आत्मसमर्पण में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तब तन्त्रिका ताप अथवा न्यूरासिस की समस्या उत्पन्न होती है।

मॉसलों ने इन बात पर विशेष बल दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति का क्या कर्तव्य है कि वह यह जानने का प्रयास करे कि उसका अन्तरंग स्वरूप क्या है? इस संदर्भ में आत्मसिद्धि पर मॉसलों के बल दिया है। उनके अनुसार हमारे समाज में ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्हें कि हम आत्मसिद्ध कह सकते हैं। आत्मसिद्ध व्यक्ति में क्या गुण होते हैं, उनके क्या लक्षण होते हैं और उन्हें हम कैसे पहचान सकते हैं, उनका उल्लेख मॉसलों ने किया है।

आत्मसिद्धि के लक्षण -मॉसलों ने आत्मसिद्ध लोगों के लक्षण मालूम करने के लिए अब्राइम लिंकन और जेफरसन जैसे महापुरुषों के व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का विश्लेषण किया है और निम्नलिखित लक्षणों का होना स्वाभाविक माना है -

- आत्मसिद्ध व्यक्ति जीवन के यथार्थ को सही तौर पर देखता है और समझता है और फिर यथार्थ के अनुरूप अपने जीवन को बनाकर आराम से रहता है। वह सभी प्रकार की शंकाओं, अनिर्णय एवं अनिश्चितता से मुक्त रहता है।
- आत्मसिद्ध व्यक्ति अपने को, अन्य को एवं प्रकृति को पूर्णतः स्वीकार करता है। चूंकि वह स्वभाव से मिलनसार है इसलिए वह सबसे मधुर सम्बन्ध बना लेता है।
- आत्मसिद्ध व्यक्ति में सहजता पायी जाती है। वह अन्तरंग रूप से प्रेरित होकर सभी व्यक्तियों के साथ सहज और स्वाभाविक रूप से व्यवहार करता है। उसके मन में किसी प्रकार का बनावटीपन नहीं होती है।
- आत्मसिद्ध व्यक्ति समस्या केन्द्रित होता है न कि स्व केन्द्रित। वह समस्या पर ही ध्यान देता है। इसकी समस्याएं व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होती है। वह अपने स्व को समाज में विलीन कर लेता है।
- आत्मसिद्ध व्यक्ति निष्पक्ष एवं एकान्तप्रिय होता है। उसके मन में लोक कल्याण की भावना प्रबल होती है।
- आत्मसिद्ध व्यक्ति में स्वायत्तता, सांस्कृतिक एवं पर्यावरण-सम्बन्धी स्वायत्तता पायी जाती है। ये लोग सांस्कृतिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी प्रभावों से मुक्त रहकर अपनी आत्मा में ही रस लेते हैं।
- आत्मसिद्ध व्यक्ति रसास्वादन में निरन्तर चुस्त रहता है। उसकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक होती है और जीवमात्र के प्रति दयालु होता है। कण-कण में वह एक रहस्य एवं गुह्य तत्व को देखता है वह मानवता से प्यार करता है। वह सभी के प्रति प्रेम एवं स्नेह रखता है। उसके लोगों से सम्बन्ध मधुर होते हैं, उसके हृदय में सभी के प्रति सहानुभूति होती है। वह सभी के प्रति मैत्री भावना रखते हुये जीवन के सभी क्षेत्रों में जनतन्त्रात्मक व्यवहार करता है। वह साध्य और साधना दोनों को समान महत्व देता है।
- आत्मसिद्ध व्यक्ति स्वभाव से दार्शनिक और हंसमुख होता है। वह साधारण व्यक्तियों से कुछ ऊपर की स्थिति में होता है। ऐसे व्यक्तियों में सृजनशीलता पायी जाती है। मॉसलों के अनुसार ऐसा कोई आत्मसिद्ध व्यक्ति नहीं हो सकता है जिसमें किसी-न-किसी प्रकार की सृजनशीलता या मौलिकता अथवा आविष्कार करने की क्षमता न पायी जाती हो।

मॉसलों ने मानव की आवश्यकताओं में पांच प्रकार के सोपनों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार सबसे पहले आधार रूप में जैविक एवं शारीरिक आवश्यकताएं होती हैं। जब व्यक्ति की शारीरिक एवं अन्य भौतिक

आवश्यकताएं पूरी हो जाती है तब वह अपनी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक सुरक्षा के लिए आतुर होता है। तीसरे सोपान पर मॉसलों ने प्रेम की आवश्यकताओं को रखा है। शारीरिक एवं भौतिक और सुरक्षा की आवश्यकताएं जब पूरी होने लगती हैं तब इसी के साथ व्यक्ति प्रेम और स्नेह की आवश्यकताओं को अनुभव करने लगता है। चौथे सोपान पर आदर और सम्मान की आवश्यकता व्यक्ति अनुभव करता है वह चाहता है कि समाज में उसका मान हो और महत्व बढ़े। पांचवे और अन्तिम सोपान पर मॉसलों ने आत्मसिद्ध की आवश्यकता को स्थान दिया है। इस आवश्यकता की पूर्ति वास्तव में व्यक्ति के जीवन का परमबिन्दु है।

लेकी के अनुसार व्यक्ति निरन्तर एकता के लिए प्रयास करता है लेकिन यह आवश्यक नहीं की उसका प्रयास सफल हो क्योंकि वह जिस पर्यावरण में रहता है उनका प्रभाव भी प्रयासों पर पड़ता है। यदि सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां किसी व्यक्ति के विकास में बाधक हैं तो स्पष्ट है कि उसे सफलता प्राप्त नहीं होगी। व्यक्ति के द्वारा एकता के लिए प्रयास में जो बाधाएं आती है उसको ध्यान में रखते हुए प्रेसकाट लेकी ने आत्मसंगति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस संदर्भ में उनका कथन है कि - “हम व्यक्तित्व की संकल्पना मूल्यों के ऐसे संगठन के रूप में करते हैं। जो आपस में सुसंगत होते हैं। व्यवहार इस संगठन में निहित समग्रता और एकता को बनाये रखने के प्रयास की अभिव्यक्ति है। इस सिद्धान्त के संदर्भ में लेकी ने व्यक्ति को एक एकीकृत प्रणाली के रूप की कल्पना की है जिसके सामने प्रायः दो प्रकार की समस्याएं उपस्थित रहती हैं। पहली समस्या का सम्बन्ध है व्यक्ति की आन्तरिक समरसता एवं सामंजस्य से। व्यक्ति की दूसरे प्रकार की समस्या है पर्यावरण से अच्छा सम्बन्ध बनाएं रखना। दूसरे शब्दों में व्यक्ति की यह उत्कृष्ट इच्छा होती है कि वह जिस समाज में रहता है उसमें उसे किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े। लेकी ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि व्यक्ति के जीवन और जगत में संघर्ष उत्पन्न होते हैं तब इसके फलस्वरूप उसका सम्यक एवं सर्वांगीण विकास होता है बशर्ते कि वह अपने व्यक्तित्व की सर्वांगपूर्णता को खण्डित न होने दे।

2.4 सारांश

सारांश के रूप में व्यक्तित्व के अनेक सिद्धान्तों को जानने का प्रयास किया गया है। समाज में विभिन्न प्रकार की प्रक्रियायें समानान्तर प्रसारित होती हैं। जिनमें व्यक्ति एक करता के रूप में उन प्रक्रियाओं को सकारात्मक अथवा नकारात्मक स्वरूप में अपनाता है। व्यक्ति समाज के एक सदस्य के रूप में सामाजिक समूह, समुदाय, संस्थाओं, एवं संगठनों के सदस्यों के साथ सहयोग, सम्मिलन, समायोजन, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता की प्रक्रियाओं में सम्मिलित होता है तथा समाज को एक नया स्वरूप प्रदान करता है। व्यक्ति प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक प्रक्रियाओं में सहयोग करता है। जिससे सामाजिकप्रतिमान तथा वैयक्तिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक अर्थ को समझाइए।
2. शैल्डन के द्वारा दिये गये शरीर संरचना सिद्धान्त के तीन तत्वों पर प्रकाश डालिए।
3. व्यक्तित्व के क्षेत्र सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एडलर, ए0, प्राब्लम्स ऑफ न्यूरोसिस, हारपर एण्ड रो न्यूयार्क, 1964

2. कोलमैन, जूल्स वी., साइकोथेराप्यूटिक प्रिन्सिपल्स इन केसवर्क इंटरव्यूक अमेरिकन जर्नल ऑफ साइक्याट्री, 1951
3. आलपोर्ट, एफ.एच., सोशल साइकालोजी, हघटन मिफलिन कं0 वास्टन, 1925

व्यक्तित्व की समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 व्यक्तित्व का समस्याएं
- 3.3 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक
- 3.4 सारांश
- 3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. व्यक्तित्व की समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।
2. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों को जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

साधारणतया व्यक्तित्व का तात्पर्य उन गुणों से लगाया जा सकता है जो दूसरों पर अपना प्रभाव स्थापित करने में सहायक होते हैं। व्यक्तित्व एक परिवर्तनशील समष्टि है। यह पर्यावरण के प्रभाव से निरन्तर बदलती रहती है। इसी कारण कभी-कभी असामान्य स्थितियों में व्यक्तित्व से सम्बन्धित कुछ समस्याएं भी उत्पन्न हो जाती हैं। प्रस्तुत इकाई में हम व्यक्तित्व से सम्बन्धित उन्हीं समस्याओं पर चर्चा करेंगे।

3.2 व्यक्तित्व की समस्याएं

करेन हार्नी के फ्रायड द्वारा विकसित मनोविश्लेषण के आधार पर अनेक वर्षों तक मानसिक चिकित्सा की न्यूयार्क तथा शिकागो में इस विषय पर अनेक नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। फलतः फ्रायड के विचारों से भिन्न सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। सन् 1937 में पुस्तक प्रकाशित की। इसके अनुसार मनोस्नायु विकृत व्यवहार का अध्ययन समाज और संस्कृति के संदर्भ में होना चाहिए। कोई व्यक्ति न्यूरोटिक उस समय माना जाता है जबकि उसका व्यक्तित्व सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भिन्न होता है। प्रत्येक समाज की संस्कृति भिन्न-भिन्न होती है अतः वही व्यक्तित्व दूसरे समाज में न्यूरोसिस का स्वरूप भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न होता है।

हार्नी के अनुसार न्यूरोसिस का मूल कारण चिंता है। (1) फ्रायड की भांति हार्नी भी शैशवकालीन अनुभवों पर बल देती हैं। यदि किसी व्यक्ति का शैशक दुखदायी तथा चिंता पूर्ण रहा है तो वह व्यक्ति न्यूरोटिक

बन सकता है। (2) इसके अतिरिक्त न्यूरोसिस का कारण स्नेह का अभाव है। इससे माता-पिता बालक के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं तो वह न्यूरोटिक बन जाता है। हार्नी का विचार है कि जिन बालकों को अपने माता-पिता से उचित मात्रा में स्नेह नहीं मिलता है वे कालान्तर में अपने माता-पिता के प्रति घृणा का भाव रखने लगते हैं। उनमें सहिष्णुता की कमी पायी जाती है। इस प्रकार माता-पिता का व्यक्तित्व तथा परिवार का पर्यावरण जब बालक के लिए चिंता का कारण बन जाता है। हार्नी के अनुसार न्यूरोटिक व्यक्ति संवेगात्मक दृष्टि से असन्तुष्ट रहता है और उसमें विश्वास की कमी हो जाती है। वह दूसरों के साथ मिलकर कार्य भी नहीं कर सकता क्योंकि उसके दूसरों पर विश्वास नहीं होता।

न्यूरोटिक व्यक्तित्वकी विशेषताएं - हार्नी ने लिखा है कि न्यूरोटिक व्यक्ति सदा स्नेह पाने का प्रयास करता है। इसलिए वह ऐसा व्यवहार करता है जो असामाजिक तथा अस्वाभाविक होता है।

(2) वह अधिकार तथा सत्ता पाने का प्रयास अस्वाभाविक रीति से करता है। अपनी कमी कम करने के लिए वह दूसरों पर प्रभाव डालना चाहता है कि अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(3) वह अपने अहं को अस्वाभाविक रीति से सत्ता पाने के लिए विकसित करता है। वह अधिक धन खर्च करता है जिससे लोग उसका प्रभाव माने।

(4) वह अस्वाभाविक रीति से प्रतिस्पर्धा करता है। वह किसी कार्य को करके दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करता है। अपनी दूसरी में हार्नी ने न्यूरोटिक और संस्कृति के आपसी सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। ऐसा करते समय उन्होंने विचार व्यक्त किया कि जब किसी व्यक्ति के मन में विरोधी प्रवृत्तियां उत्पन्न होती है तब उसके फलस्वरूप वह न्यूरोटिक बन जाता है।

हार्नी ने आडियस काम्प्लेक्स पर भी प्रकाश डाला है। उनके अनुसार फ्रायड द्वारा वर्णित आडियस ग्रन्थि सम्बन्धी धारणायें उचित नहीं है। यह सही है कि बालक अपने माता-पिता से स्वाभाविक रूप में स्नेह रखता है लेकिन उसके मूल में काम वासना का होना हार्नी ने उस रूप में स्वीकार नहीं किया जैसा कि फ्रायड मानता है। हार्नी के अनुसार जब बाह्य पर्यावरण में बालक के लिए चिंताजनक परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती है तब उनसे बचने के लिए वह अपने माता-पिता के प्रति आकर्षित होता है और उनका अत्यधिक सामीप्य चाहता है।

सन् 1945 में एक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि व्यक्ति के चरित्र में जब संघर्षों की प्रधानता हो जाती है तब वह न्यूरोटिक हो जाता है। ये संघर्ष सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होते हैं। जब व्यक्ति में नैतिक संघर्षों का विकास होता है तब उसमें प्रायः दो प्रकार की अभिवृत्तियां पायी जाती है। प्रथम के अनुसार वह दूसरे लोगों की ओर अग्रसर होता है। वह अपना सम्पर्क बढ़ाना चाहता है। इस अभिवृत्ति के मूल में व्यक्ति की स्नेह के लिए न्यूरोटिक आकांक्षा है। दूसरी अभिवृत्ति वह है जिसके फलस्वरूप अपना प्रत्याहार करता है। इससे वह अपने को सुरक्षित पाता है तथा न्यूरोटिक व्यक्तित्व की रक्षा करता है। आन्तरिक संघर्षों की अभिवृत्ति का सम्बन्ध एक तीसरे प्रकार की स्थिति से है जिसके कारण व्यक्ति दूसरों का विरोधी बन जाता है इस अभिवृत्ति के फलस्वरूप वह अन्य लोगों का विरोध करके अपने न्यूरोटिक व्यक्तित्वको कम करता है।

हार्नी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में संघर्ष पाये जाते हैं लेकिन कुछ लोग अपने आन्तरिक संघर्ष को समाधान करने में असमर्थ होते हैं। ऐसा सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण होता है। इन संघर्षों के फलस्वरूप व्यक्ति तीन अभिवृत्तियों का विकास करता है। इन्हीं तीनों अभिवृत्तियों से सम्बन्धित हार्नी ने व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये हैं -

1. अनुपालक प्रकार
2. आक्रामक प्रकार
3. तटस्थ प्रकार

पहले प्रकार के व्यक्तित्व में अन्य लोगों की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। दूसरे के स्नेह व प्रेम का भूखा होता है। वह सदा प्रयास करता है कि वह अन्य का सहारा लेकर कार्य कर सके। दूसरे प्रकार के व्यक्ति दूसरों को अपना विरोधी मानकर चलते हैं। वह सदा दूसरे से लड़ने का प्रयास करता है। वह किसी न किसी प्रकार से दूसरों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने का प्रयास करता है। तीसरे प्रकार के व्यक्ति आश्रम आम निर्भर होने की कोशिश करता है। अपनी आत्म निर्भरता के लिए वह यथासम्भव अपनी आवश्यकताओं को भी कम कर लेता है। उसका जीवन एकाकी होता है। इस प्रकार के व्यक्ति अपनी भावनाओं की दबा कर रखता है। वह सामाजिक सम्बन्ध कम रखता है। हार्नी का विचार है कि सभी न्यूरोटिक में ये तीनों लक्षण पाये जाते हैं परन्तु एक प्रकार की प्रधानता होती है।

हार्नी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का एक आदर्श रूप होता है जिससे वह निरन्तर अपनी तुलना करता रहता है। न्यूरोटिक व्यक्तियों में उसका आदर्श रूप प्रायः यथार्थ पर आधारित नहीं होता। इसके फलस्वरूप व्यक्ति न्यूरोटिक बना रहता है।

फ्रायड ने न्यूरोटिक के जिन कारणों को जैविक माना है हार्नी ने उसे सांस्कृतिक माना है। फ्रायड ने लिविडों के विषय में लिखा है कि जब लिविडों का प्रभाव अवरूद्ध हो जाता है तब व्यक्ति न्यूरोटिक बनता है। लेकिन हार्नी ने इसके कारण को स्नेह की कमी बताया है। हार्नी ने शैशवकालीन अनुभवों पर बल नहीं दिया। उन्होंने व्यक्तित्व की वर्तमान दशा के विश्लेषण पर अधिक बल दिया है। मनोचिकित्सक रोगी के अभिवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा उसके व्यक्तित्व का निर्धारण इसी आधार पर करता है। इसके बाद रोगी में यह क्षमता उत्पन्न करता है जिससे वह अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर सके। इस प्रकार रोगी अपनी कठिनाइयों को समझकर और यथार्थ का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर संतुलित व्यक्तित्व प्राप्त करता है।

सुलीवान - सुलीवान ने समाजशास्त्रीय दृष्टि से मानसिक चिकित्सा पर बल दिया तथा मनोविश्लेषण के क्षेत्र में नवीन सिद्धान्तों और विचारों को स्पष्ट किया। उन्होंने अपने विचारों के लिए नवीन-प्रयत्नों तथा संकल्पनाओं का निर्माण किया।

सुलीवान के अनुसार मानसिक रोग का एक प्रमुख कारण परस्पर सम्बन्धों का त्रुटिपूर्ण हो जाना है। इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि परस्पर सम्बन्ध का विकास जन्म के बाद उस समय होने लगता है जब शिशु का सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों से होता है। जन्म के बाद जिस प्रकार के व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का अवसर उसे मिलता है उसके आधार पर वह अपना परस्पर सम्बन्ध विकसित करता है। इस प्रकार बालक के व्यक्तित्व का विकास उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन से प्रभावित होता है। आनुवंशिकता से शारीरिक गुण प्राप्त होते हैं लेकिन इन गुणों का विकास सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण में होता है।

सुलीवान के अनुसार सामान्य रूप से व्यक्तित्व के दो पक्ष होते हैं - उसका एक लक्ष्य को तुष्टि है और दूसरा सुरक्षा। अपनी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति जो व्यक्तित्वकरता है उससे उसको तुष्टि प्राप्त होती है लेकिन सुरक्षा के लिए वह ऐसे कार्य करता है जिसका स्वरूप सांस्कृतिक है अर्थात् समाज और संस्कृति को ध्यान में रखकर जो व्यक्तित्वकरता है उससे उसमें सुरक्षा की भावना विकसित होती है। जब कभी कोई व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक परम्परा के विरुद्ध कोई काम करता है तब उसकी मनोवैज्ञानिक सुरक्षा दुर्बल हो जाती है। अतः

व्यक्तित्वका लक्ष्य संतोष और सुरक्षा है। इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। तुष्टि की प्राप्ति परोक्ष रूप से सुरक्षा के विकास में सहायक होती है और सुरक्षा के लिए किये गये प्रयास तुष्टि देते हैं। उनके अनुसार मूलतः सुरक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति के सामाजिक अनुमोदन तथा स्वीकृति से है।

3.3 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक

व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण के लिए बहुत से कारक प्रत्यक्ष तथा उप्रत्यक्ष रूप से प्रभावी होते हैं। इनमें तीन कारक मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं।

1. शारीरिक संरचना या प्राणीशास्त्रीय आधार
2. मनोवैज्ञानिक संरचना
3. सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचना

1.शारीरिक संरचना या प्राणीशास्त्रीय आधार

व्यक्ति की शारीरिक संरचना व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करती है। व्यक्ति के अच्छे व्यक्तित्व विकास के लिए एक विकसित तथा सन्तुलित शरीर-रचना अति आवश्यक है, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। अतः व्यक्ति की मानसिक विशेषताओं, बौद्धिक कुशलता, निपुणता, क्षमता तथा संवेगों के साथ-साथ सन्तुलित शरीर रचना भी व्यक्तित्व का सर्वप्रमुख आधार है।

2.मनोवैज्ञानिक संरचना

व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक संरचना के अन्तर्गत उसकी अभिवृद्धि, गुणानुभूति, भाव, संवेग, मूल्य तथा आदर्श आदि सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अभिवृत्तियाँ मनुष्य के व्यक्तित्व के स्वरूप का निर्धारण करती हैं। भव तथा संवेग उसके व्यक्तित्व को नियंत्रित करते हैं तथा मूल्य और आदर्श व्यवहार को संचालित करते हैं। उन गुणों के आधार पर व्यक्ति अपने वातावरण के प्रति एक निश्चित अभियोजन प्रकट करता है।

3.सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचना

व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा होता है। समाज में एक दूसरे के पारस्परिक सम्बन्धों या परस्पर अन्तक्रियाओं का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में अत्यधिक प्रभावी होता है। इसके साथ ही विभिन्न सांस्कृतिक प्रयावरणों का प्रभाव भी व्यक्ति के व्यवहार में भिन्नताएं उत्पन्न करता है। व्यक्ति जिस प्रकार के सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण में रहता है उसके व्यवहार में उसी के अनुरूप मनोवृत्तियाँ, विचार, आदतें, परम्पराएँ तथा सामाजिक मूल्यों का समावेश होता है जो उसके व्यक्तित्व को पूर्णतया प्रभावित करते हैं। अतः व्यक्तित्व निर्माण में सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

3.4 सारांश

सारांश के रूप में प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत व्यक्तित्व से सम्बन्धित समस्याओं को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ-साथ व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यक्तित्व से सम्बन्धित समस्याओं पर चर्चा कीजिए।
 2. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों को संक्षेप में बताइए।
-

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

-एडलर, ए0, प्रॉब्लम्स ऑफ न्यूरोसिस, हारपर एण्ड रो न्यूयार्क, 1964

-कोलमैन, जूल्स वी., साइकोथेराप्यूटिक प्रिन्सिपल्स इन केसवर्क इंटरव्यूक अमेरिकन जर्नल ऑफ साइक्याट्री, 1951

-आलपोर्ट, एफ.एच., सोशल साइकालोजी, हघटन मिफलिन कं0 वास्टन, 1925

व्यक्तित्व का विकास

इकाई की रूपरेखा

- 4.0 उद्देश्य
- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 व्यक्तित्व का विकास
- 4.3 सारांश
- 4.4 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. व्यक्तित्व के विकास से सम्बन्धित तथ्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. व्यक्तित्व के विकास के विभिन्न चरणों को जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

सामान्य रूप से व्यक्तित्व का विकास गर्भधारण की अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। बालक जब किशोरावस्था में प्रवेश करता है तब वह कुछ-कुछ परिपक्व होने लगता है। यह समय उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। परिपक्वता आने के साथ-साथ बालक के व्यक्तित्व में विभिन्न प्रकार के शारीरिक व मानसिक बदलाव होते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि व्यक्तित्व न तो पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक है और न तो पूर्णतः शारीरिक ही है। व्यक्तित्व इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

4.2 व्यक्तित्व का विकास

व्यक्तित्व का विकास गर्भधारण की अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। गर्भधारण तथा जन्म के बीच अवस्था में सम्पूर्ण जीवन के विकास के अनुपात में सबसे अधिक तथा महत्वपूर्ण विकास होता है।

1. बालक का जन्म से पूर्व विकास - गर्भशास्त्रियों ने जन्म से पूर्व के विकास को तीन स्तरों में विभाजित किया है -
 1. रचना काल
 2. भ्रूण इम्ब्रोनिकल
 3. फेटल काल

रचनात्मक काल - सामान्यतया पूर्वप्रसव विकास की अवधि 266 दिन मानी जाती है। यह समय गर्भधारण के पूर्व वाले मासिक धर्म से 280 दिन माना जाता है। जिस कोशिका से गर्भधारण होता है वह तुरन्त

अपने को दो भागों में विभाजित कर लेती हैं फिर चार में और इसी प्रकार कम चलता रहता है। विकास के साथ-साथ कुछ कोशिकायें गोले के रूप में बन जाती हैं। इस पुंज में तीन परतों का क्रमिक निर्गम होता है और इन्हीं से विशिष्ट रचनाओं का जन्म होता है। बाहर की परत का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियां तथा नाड़ी तंत्र से होता है। मध्य परत में अस्थि पंजर, पेशियाँ तथा रुधिर वाहिनियाँ विकसित होती हैं। अन्दर की परत से जीवन सम्बन्धी विभिन्न अंगों का विकास होता है। निषिक्त के दुसरे सप्ताह में बढ़ता हुआ भ्रूण गर्भाधान नाल द्वारा गर्भाशय में चिपक जाता है। भ्रूण का हृदय गर्भाधान के 3 सप्ताह बाद गति करने लगता है।

भ्रूणकाल - पूर्व प्रसव के छठे सप्ताह से पहचानने वाले योग्य कुछ रचनाओं का विकास होने लगता है। इस आयु में भ्रूण उत्त या झिल्ली में बंद रहता है इसमें एक पदार्थ भरा रहता है जिसके द्वारा ही प्राणी विकसित होता है। 6 सप्ताह तक भ्रूण निष्क्रिय होता है। आवश्यक संग्राहक तथा प्रभावक यद्यपि उपस्थित रहते हैं परन्तु उनमें कोई सम्बन्ध नहीं होता है। तीसरे सप्ताह में न्यूराल ट्यूब का विकास होता है। एक महीने के अन्त तक भ्रूण 1/6 इंच लम्बा हो जाता है। इस स्थिति में माता को पता चलता है स्तनों में भारीपन आ जाता है, पेशाब बार-बार जाना पड़ता है। उसको सरदर्द तथा जुकाम की शिकायत हो जाती है। दूसरे महीने तक भ्रूण 1) इंच लम्बा हो जाता है। धीरे-धीरे सभी अंगों का विकास होता है।

फेटेल काल - इस काल का प्रारम्भ गर्भ से 8 सप्ताह से जन्म तक का होता है। इस अवधि में सभी रचनाओं का विकास हो जाता है। तीसरे महीने भ्रूण 3) इंच लम्बा हो जाता है उसका भार 1 औंस होता है। चौथे महीने फेटेस 7 इंच तथा 4 औंस भारी हो जाता है। 5वें महीने लम्बाई 10 इंच तथा भार 10 औंस होता है। 6 महीने में शरीर के सभी अंग पूर्ण विकसित हो जाते हैं। यदि इस अवस्था में बच्चा हो जाय तो कुछ घंटे जीवित रह सकता है। सातवें महीने तक वह 15 इंच लम्बा तथा 2) पौण्ड भारी हो जाता है। 8वें महीने तक 16 इंच लम्बा तथा 4 पौण्ड भारी होता है तथा इस समय जन्म लेने पर जीवित रहने के अवसर अधिक होते हैं। दसवें महीने के अन्त तक फेटेस 20 इंच लम्बा तथा 7) पौड भारी हो जाता है। फेटेस काल जन्म लेते ही समाप्त हो जाता है और शिशु काल प्रारम्भ हो जाता है।

2. नवजात शिशु विकास - जन्म के समय नवजात शिशु का सिर उसके सिर से (भाग के लगभग होता है। लेकिन बाद में इसमें कमी आ जाती है। पैर जन्म के समय हाथों की अपेक्षा छोटे होते हैं। जन्म के समय शिशु में 270 हड्डियाँ होती हैं जो आगे चलकर बढ़ जाती हैं। 6 महीने की आयु में अस्थायी दांत सभी निकल आते हैं जिनकी संख्या 20 होती है। 6 वर्ष के लगभग बच्चे का प्रथम स्थायी दांत निकलता है। 8 वर्ष की आयु में 17 दांत तथा 12 वर्ष की आयु में 25 दांत आ जाते हैं। 12-14 वर्ष की आयु में लगभग सभी दांत निकल आते हैं। विवेक दांत 20-25 वर्ष की आयु में निकलते हैं।

3. गामक विकास - शिशुओं में सामान्यतः 3 प्रकार की गामक प्रतिक्रियायें होती हैं:

1. अनियमित प्रतिक्रियायें
2. विशिष्ट प्रत्युत्तर
3. जटिल व्यवहार प्रत्युत्तर

शिशु की प्रथम दो वर्ष के गामक विकास में निम्नलिखित अवस्थायें देखी गयी हैं -

(i) प्रथम श्रेणी की निपुणतायें - बालक डोढ़ी ऊपर उठाता है, छाती उठाता है, बदन बढ़ाता है, घुटने सीधे करता है एवं गोद में बैठता है।

(ii)द्वितीय श्रेणी की निपुणतायें - अकेला बैठता हैं, घुटने मारता है, सहारे खड़ा होता हैं एक मिनट के लिए बिना सहारे बैठता है।

(iii)तृतीय श्रेणी की निपुणतायें - वह पेट के सहारे चलता है।

(iv)चतुर्थ श्रेणी की निपुणतायें - फर्नीचर पकड़ कर खड़ा होता है तथा रेंगता हैं, सहायता लेकर चलता है।

(v)पंचम श्रेणी की निपुणतायें - वह अकेले खड़ा होता है तथा अकेले चलता है।

4. हस्तकौशल का विकास - चौबीस सप्ताह में शिशु किसी प्रकार पकड़ने लगता है तथा 28 सप्ताह में पंजों के सहारे पकड़ता है। उन्नीस सप्ताह में अंगुलियों तथा अंगुठों के सहारे पकड़ता है। धीरे-धीरे यह विशिष्टता बढ़ती जाती है।

5. गमन विकास - चलने की क्रिया के अन्तर्गत 4 प्रमुख स्तर है -

- पीठ के बल ऊपर उठना
- स्वतंत्र बैठना
- स्वतंत्र खड़ा होना
- स्वतंत्र चलना

6.संवेगात्मक विकास -संवेग भावात्मक अनुभव होता है जिसके कारण मानसिक एवं दैहिक प्रतिक्रिया होती है। इसके परिणाम स्वरूप व्यवहार में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ जाते हैं। मैकडुगल का विचार है कि प्राथमिक प्रेरणायें सदैव संवेगात्मक होती हैं। इन प्रेरणाओं का सम्बन्ध मूल प्रवृत्तियों से होता है। इस प्रकार 14 मूल प्रवृत्तियों के 14 मूल संवेग हैं -

मूल प्रवृत्तियाँ	संवेग
1. पलायन प्रवृत्ति	भय
2.संघर्ष	क्रोध
3. जिज्ञासा	कुतूहल भाव
4. आहारान्वेष	भूख
5. पित्रीय प्रवृत्ति	वात्सल्य
6. सामूहिकता	एकाकीपन
7. विकर्षण	विकर्षण भाव
8. काम	कामुकता
9. स्वाग्रह	आत्महीनता
10. आत्म गौरव	आत्माभिमान
11. संचय	अधिकार भाव
12. याचना वृत्ति	करुणा
13. रचनावृत्ति	कृतिभाव

बालकों के 4 सप्ताह की आयु के उपरान्त भ्रू, रुदन क्रोध रुदन तथा कष्ट रुदन में अन्तर स्पष्ट होने लगता है। उसके जीवन के प्रथम वर्ष में उसकी चीख और रुदन की अभिव्यक्ति को आसानी से पहचाना जा सकता है। धीरे-धीरे सभी संवेग उसमें प्रकट होने लगते हैं। इन संवेगों को समझना आवश्यक होता है।

7. स्मृति विकास

स्मृति विकास द्वारा बालक का मानसिक विकास प्रारम्भ होता है। व्यक्ति अपनी प्रारम्भिक आयु से ही अपने अनुभवों को एकत्रित करता रहता है। परन्तु इन अनुभवों की स्मृति की प्रक्रिया 2) वर्ष के पश्चात् ही प्रारम्भ होती है। अनुभव से स्मृति का विकास होता है तथा साथ ही साथ विस्मृति भी क्रिया करने लगती है। स्मृति के 3 प्रमुख अंग हैं -

(i) स्मरण करना

(ii) धारण

(iii) अभिज्ञान

स्मरण प्रक्रिया को निम्नलिखित तत्व प्रभावित करते हैं -

1. मानसिक तत्परता
2. निश्चय
3. समझ
4. उत्तेजित मनःस्थिति
5. रुचि
6. थकान

8. बौद्धिक विकास

बुद्धि का तात्पर्य वस्तु बोध, अन्वेषण, दिशा निर्देशन तथा आलोचनात्मक योग्यता है। बुद्धि उन कार्यों को करने की योग्यता है जिसमें कड़िनाई जटिलता, अमूर्तता, लक्षण प्राप्ति में अनुमूलन, सामाजिक मूल्य, मितव्ययिता तथा मौलिकता का उद्गम होता है। व्यक्तिगत बुद्धि के लिए 3 बातें महत्वपूर्ण हैं -

1. व्यक्ति ने जिस प्रकार का मस्तिष्क लेकर जन्म लिया है।

2. व्यक्ति में अवलोकन करने, सीखने तथा कार्य करने के अवसर

सामाजिक बुद्धि - व्यक्तियों को समझने तथा उनके साथ व्यवहार करने की कुशलता।

मूर्त बुद्धि - वस्तुओं को पहचानने तथा उनका उपयोग करने की योग्यता।

अमूर्त बुद्धि - शाब्दिक अर्थ को समझना तथा उनको उपयोग में लाना। मानसिक आयु किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त विकास की सीमा की वह अभिव्यक्ति है जो उसकी कार्यात्मक उपलब्धियों से ज्ञात की जाती है तथा उसकी

उपलब्धियों को उसकी आयु से लगाया जाता है। उदाहरण के लिए जिस बच्चे की मानसिक आयु 6 वर्ष है तो इसका तात्पर्य यह है कि वह 6 वर्ष के बच्चे के समान कार्य करने में सफल होता है।

बालक की बुद्धि की मात्रा को बुद्धि लब्धि कहते हैं। बुद्धि लब्धि निकालने के लिए निम्न तरीका उपयोग में लाया जाता है -

$$\begin{aligned}\text{बुद्धि लब्धि} &= \text{मानसिक आयु} / \text{वास्तविक आयु} \times 100 \\ &= 10/12 \times 100 = 82.33 \text{ बुद्धि लब्धि}\end{aligned}$$

बुद्धि मापन विधि - सन् 1911 में बिने ने अपनी पहले की प्रश्नावली में संशोधन करके निम्नलिखित मापन विधि अपनायी।

तीन वर्ष की आयु के लिए -

तुम्हारी नाक, आंख और मुंह कहां है

-2 अंकों की बनी संख्या को दोहराना

-6 शब्दों से बने वाक्य को दोहराना

-चित्र में जो देखते हो वह कहो

-अपना अन्तिम नाम बताओ।

चार वर्ष की आयु के लिए

-तुम लड़की हो या लड़का

--तीन संख्याओं को दोहराना

-कुंजी, चाकू और सिक्का दिखाकर - ये क्यों हैं?

पांच वर्ष की आयु के लिए -

-विभिन्न भार के दो बक्सों की तुलना करवाना

-वर्ग को दिखाकर उसे खिंचवाना

-धैर्य के खेल खेलने को कहना

-चार सिक्कों को गिरवाना

-10 शब्द खण्डों वाले वाक्य को दोहराना

आठ वर्ष की आयु के लिए -

-20 से 0 तक पीछे की ओर गिरने को कहना।

-दिन और तारीखों के नाम पूछना

-5 अंकों की बनी संख्या को दोहराना

-9 सिक्कों को गिरवाना

-चार रंगों का नाम बताना

-किसी गद्य काव्य को पढ़वाना और दो बातों को याद रखने को कहना।

ग्यारह वर्ष की आयु के लिए -

निरर्थक कथनों की आलोचना करवाना

-किसी वाक्य में 3 शब्द प्रयुक्त करना

-3 मिनट में 60 शब्द कहलाना

-अमूर्त वस्तुओं की परिभाषा करवाना

-किसी वाक्य में बेतरतीब रखे शब्दों को तरतीब में रखवाना

पन्द्रह वर्ष की आयु के लिए -

-7 अंकों को दोहराना

-एक मिनट में दिये हुए शब्द से 3 प्रकार की लय निकलवाना

-26 शब्दों में बने वाक्य को दोहराना

विने की बुद्धि परीक्षा के अतिरिक्त अनेक प्रश्नावलियां अब रचित हो गयी है जिनसे बुद्धि को नापा जा सकता है।

बुद्धि की अभिवृद्धि

बुद्धि परीक्षा के परिणामों से यह सिद्ध हो चुका है कि बालक की बुद्धि उसकी उम्र के साथ-साथ बढ़ती है और यह किशोरावस्था में अन्त तक बढ़ती है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि 16 वर्ष के बाद कोई बौद्धिक विकास नहीं होता। व्यक्ति का बौद्धिक विकास 30 वर्ष या उसके परे तक निरन्तर चालू रह सकता है। किन्तु नयी-नयी समस्याओं को हल करने की योग्यता उसमें जो 16 वर्ष पर थी वही अब 40 वर्ष पर भी होगी। बाद को बुद्धि नहीं बढ़ती है ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान अर्जित शक्ति है जो बुद्धि नहीं है। बुद्धि जन्मजात योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी भी समस्या के हल करने के सम्भव साधनों को अपनी क्षमता के अनुसार जुटाने, उसे हल करना और अपने को वातावरण के अनुकूल व्यवस्थित करता है।

9.भाषा विकास

बालक जन्म के समय केवल चीखने का उपयोग अपनी आवश्यकताओं को स्पष्ट करने के लिए करता है। उसकी ध्वनियाँ परिवर्तित होती है तथा किसी चेतनात्मक उद्देश्य के कारण प्रकट होती है। उदाहरण के लिए भूख लगने, पीड़ा होने, कष्ट पहुंचने आदि के समय वह चिल्लाता है परन्तु इससे वास्तविक स्थिति का पता नहीं चलता है। जब वह दो महीने का होता है तो बड़बड़ाने लगता है तथा कुछ अस्फुट शब्द भी बोलता है। 6 महीने के लगभग कुछ स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों की संधि भी हो जाती है। उदाहरण के लिए मां, ना, दा आदि शब्द कहने लगता है। परन्तु भाषा विकास के लिए सुनना अत्यन्त आवश्यक होता है। 1 वर्ष की अवस्था में वह शब्दों का उपयोग करना पारम्भ कर देता है। 18 महीने की आयु तक वह काफी शब्द बोलने लगता है। 2 वर्ष की आयु में लगभग 270 शब्दों का उसका भंडार होता है। 7 वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते उसका शब्द भंडार 16,000 शब्दों तक पहुंच जाता है।

भाषा विकास में निम्न कारकों का समावेश होता है-

(i)शारीरिक दशा - भाषा विकास के लिए शरीर के अंगों जैसे मुंह, नाक, कान, जीभ, कंठ आदि का सामान्य होना आवश्यक होता है। यदि इन अंगों में किसी प्रकार का दोष होता है तो बालक भाषा का उचित विकास नहीं कर पाता है।

(ii)बुद्धि - बुद्धि तथा भाषा विकास में गहरा सम्बन्ध है जिन बालकों की बुद्धि तीव्र होती है वे जल्दी ही भाषा का उपयोग अपने व्यवहार में करने लगते हैं।

(iii)यौन भेद - ऐसा पाया गया है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियां शीघ्र बोलना प्रारम्भ कर देती हैं तथा उनके शब्दों का अधिक विस्तार होता है। उनके वाक्यों में अशुद्धियां कम होती हैं। बालिकायें याद करने में तेज होती हैं।

(iv)सामाजिक वातावरण - वातावरण से प्राप्त उद्दीपन सहयोग का कार्य करता है। माता-पिता किस प्रकार बालक को भाषा ज्ञान कराना चाहते हैं। यदि बालक की संकेत से ही आवश्यकतायें पूरी हो जाती है तो वह बोलने का प्रयत्न नहीं करता है। यदि उसके साथ तुतलाया जाता है तो शब्द बोलने का प्रयास नहीं करता। यदि दो भाषायें घर में बोली जाती हैं तो दोनों को ग्रहण करने का प्रयास करता है जिससे उलझन होती है। आर्थिक स्थिति का भी प्रभाव भाषा के विकास पर पड़ता है।

4.3 सारांश

सारांश के रूप में प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत गर्भधारण की अवस्था से ही व्यक्तित्व के विकास को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ-साथ व्यक्तित्व के विकास के विभिन्न चरणों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

4.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बालक के जन्म से पूर्व विकास के तीनों स्तरों का वर्णन कीजिए।
2. ग्रामिक विकास से आप क्या समझते हैं? उसकी विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
3. व्यक्तित्व के संवेगात्मक विकास पर प्रकाश डालिए।

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एडलर, ए0, प्राब्लम्स ऑफ न्यूरोसिस, हारपर एण्ड रो न्यूयार्क, 1964
2. कोलमैन, जूल्स वी., साइकोथेराप्यूटिक प्रिन्सिपल्स इन केसवर्क इंटरव्यूक अमेरिकन जर्नल ऑफ साइक्याट्री, 1951
3. आलपोर्ट, एफ.एच., सोशल साइकालोजी, हघटन मिफलिन कं0 वास्टन, 1925

मानव व्यवहार: अर्थ एवं अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मानव व्यवहार का अर्थ

5.3 मानव व्यवहार एवं पर्यावरण

5.4 सारांश

5.5 अभ्यासार्थ पत्र

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. मानव व्यवहार के अर्थ को जान सकेंगे।
 2. मानव व्यवहार के मूल आधार को जान सकेंगे।
 3. मानव व्यवहार एवं पर्यावरण के मध्य सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
 4. पर्यावरण का मानव व्यवहार पर प्रभाव को जान सकेंगे।
-

5.1 प्रस्तावना

मानव व्यवहार एक जटिल व्यवस्था है। शरीर में विभिन्न अंग एवं भाग होते हैं जो स्नायु संस्थान द्वारा एकत्रित होकर कार्य करते हैं। सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा एक समाज अपने सदस्यों को उनकी निर्धारित भूमिकाएं निभाने, नियमों का पालन करने एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए प्रेरित करता है। सामूहिक परिस्थिति में व्यक्तियों के 'एक साथ' सम्मिलित आचरण या क्रिया को सामूहिक व्यवहार कहते हैं। विस्तृत अर्थ में जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए क्रिया करते हैं तो उसे सामूहिक क्रिया या व्यवहार कहते हैं।

5.2 मानव व्यवहार का अर्थ

मानव व्यवहार पर जैविकीय शारीरिक एवं सामाजिक कारकों को प्रभाव पड़ता है। मानव व्यवहारके विकास की प्रक्रिया, सीखने के अवसर सम्प्रेरक, मनोवृत्तियाँ, अहं संरचना, सांस्कृतिक तत्व, सामाजिक विकास के अवसर तथा व्यक्ति के अपने मानसिक सुरक्षात्मक तरीके उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन कारकों तथा तत्वों को सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए जानना आवश्यक होता है जिससे वह व्यक्ति की सम्पूर्णता को समझ सके तथा उपचारात्मक कदम उठाने में सक्षम हो सके।

मानव व्यवहार एक जटिल व्यवस्था है। शरीर में विभिन्न अंग एवं भाग होते हैं जो स्नायु संस्थान द्वारा एकत्रित होकर कार्य करते हैं। उनका पृथक्-पृथक् होना केवल अस्तित्व मात्र होता है परन्तु संगठित होने पर ही उनकी उपयोगिता, विशेषता एवं कार्यात्मकता स्पष्ट होती है। इस प्रकार की शरीर की पूर्णता को अवयव कहते हैं। इस अवयव की प्रतिक्रियाओं तथा अभिव्यक्तियों को मानसिक कहा जाता है। दूसरे शब्दों में व्यवहार अवयव के शारीरिक एवं मानसिक पक्षों की अभिव्यक्ति का परिणाम है। इसकी अभिव्यक्ति उद्देश्यों एवं विषयों के प्रति होती है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के विश्वास मनोवृत्ति, सहयोग, सहानुभूति, अनुकरण तथा अन्य सभी मनोवैज्ञानिक एवं जैविकीय तत्व प्रदर्शित होते हैं। यह व्यवहार जैविकीय तथा सामाजिक सम्प्रेरकों द्वारा निर्देशित होता है। दूसरे शब्दों में मानव व्यवहार पर जैविकीय एवं सामाजिक कारक अपना प्रभाव डालते हैं तथा एक विशेष व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए यह सर्वप्रथम जानना आवश्यक हो जाता है कि वे कौन-कौन से महत्वपूर्ण कारक हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

मानव व्यवहार के मूलाधार

मानव व्यवहार अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होता है परन्तु इन कारकों में सबसे दो महत्वपूर्ण कारक हैं - (1) शारीरिक, (2) सामाजिक। अर्थात् शारीरिक तथा जैविकीय कारकों के अतिरिक्त व्यक्ति सामाजिक पर्यावरणीय कारकों द्वारा भी प्रभावित एवं निर्देशित होता है। व्यवहार के कुछ कारक जन्मजात होते हैं तथा दूसरे कारक सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की देन होते हैं। इस प्रकार व्यवहार के दो प्रमुख आधार हैं -

(1) जन्मजात आधार

(2) अर्जित आधार

5.3 मानव व्यवहार एवं पर्यावरण

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है - परि \$ आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है ढके हुये। अर्थात् प्राणी को छोड़कर जो कुछ उसके चारों ओर है वह उसके पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए गर्भावस्था में गर्भ ही बालक के लिए पर्यावरण होता है। जन्म लेने पर परिवार तथा भौगोलिक दशायें पर्यावरण में आती हैं। जब वह बाहर जाने लगता है तो उसके पर्यावरण में पड़ोस, खेल समूह तथा अन्य परिस्थितियाँ सम्मिलित हो जाती हैं। इसके बाद विद्यालय एवं अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का प्रभाव पड़ता है।

परिभाषा -

जिसवर्ट, पी0: पर्यावरण उस सबको कहते हैं जो किसी एक वस्तु को चारों ओर से घेरे तथा इस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है।

GISBERT, P. : Environment is anything immediately surrounding an object and exerting a direct influence on him

इलियट, टी0डी0: चेतन पदार्थ की किसी ईकाई के प्रभावकारी उद्दीपन तथा अन्तःक्रिया के क्षेत्र को पर्यावरण कहते हैं।

इनवाइनमेन्ट Environment शब्द का विश्लेषण -

E = Educational institutions,

N = Neighbourhood

V = Value system

I = Interaction pattern

R = Religion

O = Occupation

N = Nurturing

M = Material facilities

E = Economic conditions

N = Natural surroundings

T = Thoughts

Thus we can say that environment includes natural surroundings, institutions, religion, occupation, material facilities, economic condition, interaction pattern and value system.

पर्यावरण, के अन्तर्गत नैसर्गिक दशायेँ, संस्थायेँ, धर्म, व्यवसाय, भौतिक सुविधाओं, आर्थिक स्थिति, अन्तःक्रिया के तरीके तथा मूल्य व्यवस्था को सम्मिलित करते हैं।

पर्यावरण के प्रकार -

बाह्य पर्यावरण

आन्तरिक पर्यावरण

$OC + IC = E$ (Environment)

OC = Outer conditions, IC = Inner Conditions

$OC = (Phy + Bio + Soc)$

Phy = Physical : Water, air, sunlight, climate season soil, humidity, housing radiation

Bio = Biological : plants, animals, insects, micro organism, nutrition,

Soc = Social : People, customs, culture, income occupation, religion, social and political organization, institutions, family life, standard of living, Urbanization, Industrialization, stress and strain, competition.

1- $IC = (LS + NG + PE)$

LS = Life space : Perceiving, meaning, Value importance

N = Needs : I Life : Food, water, air sexual, worth,

II Safety : Internal and external

III Love : Affection, attachment, care, attention, emotional support.

IV Relationship : Value, acceptance, appreciation, esteemed, respect, status, approval.

V Achievement : Creative and productive act, welfare, actualization self-expression.

G = Goals : Occupational goal, educational goal, home-making having children, finding financial security.

PE = Past Experience : Constructive, Destructive, Painful, Traumatic

पर्यावरण का प्रभाव -

व्यक्तित्व के सभी अंग पर्यावरण से प्रभावित होते हैं।

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है - परि \$ आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है ढके हुये। अर्थात् प्राणी को छोड़कर जो कुछ उसके चारों ओर है वह उसके पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए गर्भावस्था में गर्भ ही बालक के लिए पर्यावरण होता है। जन्म लेने पर परिवार तथा भौगोलिक दशायें पर्यावरण में आती हैं। जब वह बाहर जाने लगता है तो उसके पर्यावरण में पड़ोस, खेल समूह तथा अन्य परिस्थितियाँ सम्मिलित हो जाती हैं। इसके बाद विद्यालय एवं अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का प्रभाव पड़ता है।

पर्यावरण का मानव व्यवहार पर प्रभाव

1. भौतिक तथा जैविकीय -

प्रकार तथा क्षेत्र	प्रभाव
खान-पान	पंजाब में गेहूं, बंगाल में चावल, टुण्ड्रा में कच्चा मांस वस्त्र शीत प्रदेश में बाल दार खाल, कांगो बेसिन में नंगे, शीतोष्ण में सूती तथा ऊनी।
मकान	पर्वत पर लकड़ी के मकान तथा छत ढालू, मैदानों में ईंट तथा सीमेंट व मिट्टी के मकान।
जनसंख्या	मैदानी भागों में घनी जनसंख्या, पहाड़ी भागों में कम जनसंख्या।
व्यवसाय	समुद्र के किनारे मछली पकड़ना, मैदानों में गेहूं, चावल, आदि की खेती।
प्रजाति	शरीर का बनावट, रंग डील-डौल
यातायात के साधन	मैदानों में अधिक रेल तथा साधन पहाड़ों पर कम साधन
स्वास्थ्य	समशीतोष्ण सबसे अच्छी स्थिति
मानव व्यवहार	गर्मियों में आत्म हत्यायें अधिक
आर्थिक जीवन	कृषि उपजाऊ प्रदेश में, कारखाने खनिज प्रदेश में

कला तथा साहित्य	पर्वतीय कला में पर्वतो का वर्णन, मैदानी भाग में शस्यश्यामला हरी भरी धरती का वर्ण
-----------------	--

2. सामाजिक पर्यावरण -

परिवार (वर्ग)	उच्च तथा मध्य वर्गीय	समाजीकरण मंद, माता-पिता द्वारा अधिक देख-भाल, अच्छा बनने को प्रोत्साहन, वैयक्तिक तथा सामूहिक प्रतिमानों को सीखने पर जोर, प्रतिस्पर्धा, अच्छा बनने की चिन्ता।
	निम्न वर्गीय	समाजीकरण तेज, माता-पिताकी कम देख-रेख, जीवन लक्ष्य अपने जैसा, उपलब्धि का प्रोत्साहन नहीं, संख्यात्मक उपाय, प्रेम की कमी न होने के कारण चिन्ता की कमी।
दोषपूर्ण बालक माता-पिता में सम्बन्ध	तिरस्कार	चिन्ता, असुरक्षा, आत्मशक्ति, कमजोर, नकारात्मक दृष्टिकोण, एकाकीकरण, ईश्या, चेतन, विकास मंद
	अति लाड़ प्यार	शर्मीला, आत्म निर्भरता की कमी, आत्म मूल्यांकन की कमी।
	अति बन्धन	स्वार्थी, माता-पिता के प्रति विरोधी, शक्ति के विरोधी
	अवास्तविक मांगे	आत्म अवमूल्यन, कठोर चेतना, विकास, मानसिक संघर्ष
	अनुशासन की कमी	समाज विरोधी व्यवहार
	कठोर अनुशासन	भय, घ्रणा, मित्र भाव की कमी
	अवांछनीय	दोषपूर्ण मूल्य रचना, अवास्तविक
	माता-पिता	उद्देश्य, असमायोजित व्यवहार

3. विद्यालय -

अध्यापकों का स्वभाव	1. निरंकुश	हीनभावना, भावनाओं के स्पष्टीकरण में बाधा
	2. अति सीधे	अनुशासन हीनता
पर्यावरण	1. प्रतिस्पर्धात्मक	मध्यम वर्ग के बालकों के लिए भग्नाषा का अनुभव, निरन्तर तनाव, उच्च एवं हीन भावना का विकास, आत्म केन्द्रित
	2. सहयोगिक	साथ-साथ कार्य, सभी प्रयत्नों में सहयोग, सफलता व असफलता में सामूहिक भागीदारी, उद्देश्य, केन्द्रित, आत्म केन्द्रित, सामूहिक प्रयास, समूह से आत्मीकरण

पुरुस्कार तथा दण्ड	1. पुरुस्कार	बालक की प्रशंशा सभी के सामने करने से शैक्षिक उपलब्धि
	2. दण्ड	एकान्त में दण्ड देने पर सबसे अधिक उपलब्धि सभी के सामने दण्ड देने का अत्यन्त हानिकारक प्रभाव

4. धर्म -

आस्थावान	नैतिक दृष्टिकोण, प्रेम, सद्भावना, सहयोग, जीवन में शांति, आत्म बल, असामाजिक कार्यों के करने में भय, परम्परागत व्यवहार, आत्म हत्या की भावना तथा तनाव की कमी
धर्म में कम या बिल्कुल विश्वास न होना	नैतिक दृष्टिकोण का अभाव, सद्भावना की कमी, सदैव तनाव, आन्तरिक शान्ति की कमी, अनैतिक कार्य करने में डर नहीं, आत्महत्या की प्रवृत्ति।

पर्यावरण के अन्य प्रभाव

(1) व्यवहारिक विशेषताओं के विकास पर वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का प्रत्यक्ष प्रदर्शित होता है

गेसेल तथा थाम्पसन, स्ट्रेयर आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला कि विकास की गति तथा समय पर पर्यावरणीय दशाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इन अध्ययनों में जुड़वा बच्चों पर नियन्त्रण का तरीका उपयोग किया गया। एक को प्रशिक्षण दिया गया था, दूसरे को प्रशिक्षण नहीं दिया गया। प्रशिक्षण के होने पर भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि पर्यावरण का प्रभाव नहीं होता है क्योंकि यदि सामाजिक पर्यावरण में बालक न रहे तो उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास सम्भव नहीं है ऐसा अनेक परीक्षणों ने सिद्ध किया है।

(2) मनोवैज्ञानिक गुणों के विकास में पर्यावरण सक्रिय सहयोग करता है

मनोवैज्ञानिक गुणों (आत्मविश्वास, प्रभावशीलता, प्रधानता, क्रियात्मकता, क्रोध आकांक्षा का स्तर, विषाद) पर वंशानुक्रम का अधिक प्रभाव होता है। बेन्डनबर्ग फ्रीडमैन तथा गोटेसमैन ने अपने अध्ययनों में वंशानुक्रम को मनोवैज्ञानिक गुणों के विकास में महत्वपूर्ण सिद्ध किया है। यद्यपि अध्ययनों में काफी सीमिततायें हैं परन्तु निष्कर्षों से पता चलता है कि बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का अधिकाधिक प्रभाव पड़ता है। आइसेन्क ने यह सिद्ध किया है। लेकिन ये गुण तब तक विकसित नहीं हो सकते जब तक अनुकूल पर्यावरण न प्राप्त हों।

(3) सामाजिक गुणों का विकास पर्यावरण पर अधिक निर्भर होता है

सामाजिक गुणों (मित्रभाव, सहयोग, सहानुभूति, व्यवहार के ढंग) पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार का पर्यावरण होता है उसी प्रकार के गुण उत्पन्न होते हैं।

(4) मानसिक एवं व्यवहारिक विकृतियों पर पर्यावरण का प्रभाव होता है

मानसिक रोगों का कारण वंशानुक्रम न होकर पर्यावरण होता है। केवल कुछ ही रोगों में वंशानुक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यवहारिक विकृतियों (स्वतः प्रेम, उग्रता, अवज्ञा, ध्वन्सात्मकता, चोरी करना, झूठ बोलना, अपराध करना भगेडूपन) पर पर्यावरण का प्रभाव अधिक होता है।

उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। जीवन की प्रत्येक घटना के लिए समान उत्तरदायी है। उनमें से न ही किसी को दूर कर सकते हैं न ही प्रथक कर सकते हैं। वास्तव में मानव के विकास में पर्यावरण तथा वंशानुक्रम दोनों की अलग-अलग कल्पना नहीं की जा सकती है। जिस वृक्ष का बीज होता है उससे वही वृक्ष उत्पन्न होता है। बीज के विकास के लिए पर्यावरण की आवश्यकता होती है। मनुष्य क्या कर सकता है यह वंशानुक्रम द्वारा निश्चित है वस्तुतः क्या करता है यह उसके पर्यावरण द्वारा निश्चित होता है। वंशानुक्रम केवल क्षमता प्रदान करता है। इस क्षमता के विकास का अवसर पर्यावरण देता है। इन दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है इस प्रकार का प्रश्न करना ऐसी ही बात करना है कि मनुष्य के लिए भोजन अधिक महत्वपूर्ण है या सुरक्षा अथवा वायु। वास्तव में दोनों ही समान महत्वपूर्ण हैं।

पर्यावरण के सामान्य प्रभावों को निम्न शब्दों में लिख सकते हैं।

$PER^2S^5MI^4M^5A^4BC^3D$

P = Perception प्रत्यक्षीकरण

E = Emotions संवेग

R' = Reasoning तर्क शक्ति

R^2 = Role भूमिका

S' = Self-development आत्म विकास

S = Self evaluation आत्म मूल्यांकन

S^3 = Style of Life जीवन शैली

S^4 = Self expression आत्म प्रगटन

S^5 = Security आत्म सुरक्षा म्

E = Educational achievement
शैक्षिक उपलब्धि

H = Habits आदतें

I' = Interests रुचियाँ

I^2 = Interaction patterns अन्तःक्रिया के तरीके

I^3 = Intelligence बुद्धि

I^4 = Importance महत्व

M = Mood मन की दशा

M^2 = Method तरीके

M^3 = Mobility गतिशीलता

A^1 = Attitude मनोवृत्ति

A^2 = Adjustment समायोजन

A^3 = Acquisitiveness संग्रहता

A^4 = Accomplishment उपलब्धि

B = Behaviour व्यवहार

C^1 = Change परिवर्तन

C^3 = Concept प्रत्यय

C^2 = Capacity to work कार्य क्षमता

D = Discipline अनुशासन

5.4 सारांश

सारांश के रूप में प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत मानव व्यवहार के अर्थ को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ-साथ मानव व्यवहार तथा पर्यावरण के मध्य सम्बन्ध तथा मानव व्यवहार पर पर्यावरण के प्रभाव पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मानव व्यवहार से आप क्या समझते हैं ?
 2. मानव व्यवहार तथा पर्यावरण के मध्य सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए ?
 3. मानव व्यवहार पर पर्यावरण के प्रभाव पर प्रकाश डालिए।
-

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डीसिकों पी जॉन-द साइकोलोजी ऑफ लर्निंग एण्ड इन्स्ट्रक्शन, नई दिल्ली, 1968
2. गुप्ता, एस.पी., आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, षारदा पब्लिकेशन, इलाहाबाद उत्तर प्रदेश
3. हॉल, सी.एस. एण्ड लिन्डजे, दि थ्योरीज ऑफ पर्सनैलिटी: बिले, न्यूयार्क 1957
4. मैस्लो, ए.एच., मोटिवेशन एण्ड पर्सनैलिटी, हारपर एण्ड रो, न्यूयार्क, 1954

मानव व्यवहार के आयाम

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मानव व्यवहार के आयाम

6.3 सारांश

6.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. व्यवहार के विभिन्न आयामों को जान सकेंगे।
 2. विभिन्न मण्डलों के माध्यम से वंशानुक्रम को समझ सकेंगे।
-

6.1 प्रस्तावना

व्यवहार एक जटिल व्यवस्था है। व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया, सीखने के अवसर सम्प्रेरक, मनोवृत्तियाँ, अहं संरचना, सांस्कृतिक तत्व, सामाजिक विकास के अवसर तथा व्यक्ति के अपने मानसिक सुरक्षात्मक तरीके उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अतः इस इकाई में व्यवहार के विभिन्न आयामों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का स्पष्ट वर्णन किया गया है।

6.2 व्यवहार के आयाम

मानव व्यवहार अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होता है परन्तु इन कारकों में सबसे दो महत्वपूर्ण कारक हैं - (1) शारीरिक, (2) सामाजिक। अर्थात् शारीरिक तथा जैविकीय कारकों के अतिरिक्त व्यक्ति सामाजिक पर्यावरणीय कारकों द्वारा भी प्रभावित एवं निर्देशित होता है। व्यवहार के कुछ कारक जन्मजात होते हैं तथा दूसरे कारक सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की देन होते हैं। इस प्रकार व्यवहार के दो प्रमुख आयाम हैं -

(1) जन्मजात आयाम, (2) अर्जित आयाम।

(1) व्यवहार का जन्मजात आयाम-व्यवहार का जन्मजात आयाम शारीरिक होता है। व्यक्तिगत अनुभव के आयाम पर भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में प्राणी विभिन्न प्रतिक्रियाएँ करता है। परन्तु सम्पूर्ण क्रियाएँ स्नायु संस्थान द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित होती है। व्यक्ति व्यवहार करने के योग्य उस समय होता है जब स्नायु, स्नायु प्रवाह को ग्राहक से लेकर मस्तिष्क तक पहुंचाता है एवं मस्तिष्क की प्रतिक्रियाओं को मांस पेशियों तक पहुंचाता है। अतः स्नायु मंडल की संरचना एवं कार्य-प्रणाली का ज्ञान होने पर व्यक्ति की क्रियाओं का स्वतः ज्ञान हो जाता है। यदि

व्यक्ति चाहता है कि वह यह जाने की स्नायु कला क्या है? किस प्रकार स्नायु प्रवाह होता है, किस प्रकार स्मरण, चिंतन, सीखना आदि विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रिया से स्नायु मंडल में परिवर्तन होता है तो उसे स्नायु मंडल को समझना आवश्यक होता है।

स्नायु मंडल -

व्यक्ति का व्यवहार स्नायु मंडल द्वारा ही सम्भव होता है। इसके द्वारा उसकी चलने-फिरने, देखने-सुनने, सोचने समझने, सीखने आदि की क्रियायें होती हैं तथा व्यवहार का संचालन एवं निर्देशन होता है। इसके माध्यम से ही व्यक्ति वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करता है। इसी कारण स्नायु मंडल को समायोजनात्मक यंत्र भी कहते हैं। स्नायु मंडल का प्रमुख कार्य प्रभावक एवं ग्राहक के बीच संयोजन करना तथा व्यक्ति एवं पर्यावरण के बीच समायोजन स्थापित करना होता है। स्नायु मंडल की रचना कोषाणुओं द्वारा होती है। कोषाणु के निम्नलिखित भाग होते हैं -

- (1) साइटोप्लाज्म
- (2) मेम्ब्रेन
- (3) न्यूक्लियर्स

साइटोप्लाज्म -मेम्ब्रेन तथा न्यूक्लियर्स के बीच में पाये जाने वाले तरल पदार्थ को साइटोप्लाज्म कहते हैं। यह खिचाव एवं सिकुड़न का कार्य करता है जिसके कारण सम्पूर्ण शरीर का संचालन होता है। इस गुण के अतिरिक्त उसमें विसर्जन तथा उत्सर्ग का गुण भी पाया जाता है। साइटोप्लाज्म के सूख जाने पर इस कोश का अन्त हो जाता है।

मेम्ब्रेन - इसका कार्य संचालन करना होता है। इसके द्वारा आयन्स सामान्य रहते हैं जो कोश के दोनों ओर होते हैं।

न्यूक्लियर्स -न्यूक्लियर्स द्वारा उत्तेजना ग्रहण करता है, सन्तानोत्पत्ति करता है, शारीरिक वृद्धि होती है तथा रक्त एकीकरण होता है।

स्नायु कोष कोषाणुओं से स्नायुकोष की रचना होती है। ये कोषाणु निम्न प्रकार के होते हैं -

- (1) जीव कोश
- (2) मुख्य तन्तु
- (3) शिखा तन्तु

जीवकोश का आकार गोल होता है। इसके ऊपर झिल्ली होती है जिसे मेम्ब्रेन कहते हैं। इसके भीतर साइटोप्लाज्म तथा न्यूक्लियर्स होता है। जीव कोश का रंग भूरा होता है। यदि शिखातन्तु द्वारा प्राप्त स्नायु प्रवाह को मुख्य तन्तु की ओर ले जाता है। स्नायु कोश के केवल एक मुख्य तन्तु होता है इसका कार्य जीव कोश से स्नायु प्रवाह को लाकर अन्य स्नायु कोशों में लाने का कार्य होता है। शिखातन्तु जीवकोश से निकल कर चारों ओर फैल जाता है। इसका कार्य स्नायु प्रवाह को ग्रहण करके जीवकोश की ओर प्रेषित करना है।

स्नायु मंडल के प्रकार -

स्नायु मंडल का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है-

- (1) केन्द्रीय एवं सीमान्त अथवा (2) दैहिक एवं स्वचालित।

केन्द्रीय एवं सीमान्त स्नायुमण्डल -मस्तिष्क सुषुम्ना में पाये जाने वाले नाड़ी कोषों से केन्द्रीय स्नायु मंडल की रचना होती है और जो कोष मस्तिष्क एवं सुषुम्ना से बाहर होते हैं उनसे सीमान्त नाड़ी मंडल की रचना होती है।

स्वचालित एवं दैहिक स्नायु मण्डल - ये शरीर के आन्तरिक भाग को नियंत्रित करके व्यक्ति के अभियोजन में सहायता करते हैं। बाह्य भाग को नियंत्रित करके बाह्य अभियोजन का कार्य दैहिक नाड़ी मंडल करता है। अधिकांशतः शारीरिक परिवर्तन संवेगात्मक अवस्था में होते हैं। इनका संचालन तथा नियन्त्रण स्वचालित नाड़िमंडल करता है। यद्यपि केन्द्रीय स्नायुमंडल प्रथा स्वचालित स्नायु मंडल के कार्य क्षेत्र अलग-अलग हैं परन्तु वे एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित हैं। केन्द्रीय स्नायु मंडल का प्रमुख अंग सुषुम्ना है जो स्वचालित स्नायु मंडल में भी कार्य करता है।

स्वचालित स्नायुमंडल के दो अंग है - सहानुभूति तथा असहानुभूति। शरीर को क्रियाशील बनाने का कार्य सहानुभूति नाड़ी मंडल करता है तथा विषम परिस्थिति के लिए अतिरिक्त शक्ति की व्यवस्था भी यही करता है। इसके विपरीत शरीर के विभिन्न भागों की सक्रियता को कम करके शारीरिक शक्ति की बचत असहानुभूति मंडल करता है। शरीर के विभिन्न भाग इस स्नायुमंडल में उस समय क्रियाशील हो सकते हैं जिस समय सहानुभूति स्नायुमंडल के उत्तेजित होने पर सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील हो जाता है।

दैनिक नाड़ी मंडल -इसका कार्य व्यक्ति एवं बाह्य पर्यावरण के बीच समायोजन स्थापित करता है। इसमें क्रियात्मक तथ्या ज्ञानात्मक दोनों प्रकार की क्रियायें होती है। मस्तिष्क तथा सुषुम्ना दैहिक नाड़ी मंडल के दो भाग हैं।

सुषुम्ना - यह व्यक्ति की रीढ़ की हड्डी में होती है। इसका आकार रस्सी जैसा स्वेत एवं मुलायम होता है। इसका प्रमुख कार्य शरीर के बाह्य अंगों का मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित करना है। सुषुम्ना द्वारा ही शरीर के बाह्य हिस्सों (हाथ, पैर) आदि की क्रियाओं का कार्य सम्भव होता है। इसके द्वारा ही पढ़ना, लिखना आदि ज्ञानात्मक क्रियाओं का नियंत्रण होता है।

मस्तिष्क - यह केन्द्रीय स्नायुमंडल का प्रमुख अंग है। इसके तीन प्रमुख भाग हैं:-

1. प्रमस्तिष्क
2. लघु मस्तिष्क
3. सुषुम्ना शीर्ष

प्रमस्तिष्क - यह मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। यह दो गोलार्धों में विभाजित होता है। इन दानों के बीच एक अति गहरी दरार होती है। प्रमस्तिष्क पर बहुत सी सिकुड़ने होती हैं इनका बुद्धि से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। प्रमस्तिष्क का कार्य संवेदनाओं का अनुभव करना, इच्छा करना, स्मरण रखना तथा शारीरिक कार्यों का संचालन करना है। यही बुद्धि तथा ज्ञान का केन्द्र है जिसके द्वारा हमको सोचने, समझने, सीखने स्मरण करने तथा जांच एवं परख करने की शक्ति प्राप्त होती है।

अनुमस्तिष्क -यह प्रमस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे की ओर होता है। इसका आकार पिचके हुए गोले के समान होता है। यह भी दो गोलार्धों से बना होता है जो एक लम्बे से भाग द्वारा जुड़ा होता है। इसमें भी लहरिकाएँ होती है। इसका कार्य पेशियों की चेष्टा को नियन्त्रण करना है जिससे शरीर में गति का संचालन सुचारू रूप से हो सके। क्रियाओं में शरीर का सन्तुलन बनाये रखना इसका प्रमुख कार्य है। केवल चलने में ही दो सौ पेशियाँ कार्य करती

है। उन सभी को संतुलन में रखना तथा दुदृतापूर्वक चलने की क्षमता देने का कार्य अनुमस्तिष्क ही करता है। यदि इसमें चोट लग जाती है तो तत्काल चक्कर आने लगते हैं और शारीरिक संतुलन जाता रहता है।

सुषुम्ना शीर्ष - यह तन्त्रिकीय पदार्थ से बना हुआ गोलाकार एक पिण्ड है, जो प्रमस्तिष्क के निचले भाग में होता है। यह ऊपर की ओर प्रमस्तिष्क के निचले भाग में होता है। यह ऊपर की ओर प्रमस्तिष्क से जुड़ता होता है। इसके नीचे से सुषुम्ना आरम्भ होती है। यह शरीर का बहुत महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि सुषुम्ना से निकल कर जितनी भी तन्त्रिकायें मस्तिष्क को जाती हैं वे सभी सुषुम्ना शीर्ष से होकर जाती है। शरीर की कई मुख्य क्रियाओं जैसे रक्त परिसंचरण, हृदयगति तथा श्वास लेना और निगलने के केन्द्र यहीं पर स्थित है। इस भाग में चोट लगने पर तत्काल मृत्यु हो जाती है -

स्नायु संस्थान के अतिरिक्त निम्न जैविकीय कारक व्यवहार को प्रभावित करते हैं -

1. कंकाल तन्त्र
2. पेशी तन्त्र
3. पाचन तन्त्र
4. श्वसन तन्त्र
5. परिसंचरण तन्त्र
6. प्रजनन तन्त्र
7. नलिनाविहीन ग्रन्थियाँ

कंकाल तंत्र- शरीर में पाई जाने वाली अस्थियों से बने ढाँचे को कंकाल तंत्र कहते हैं। इसके तीन मुख्य भोग है -
(क) सिर (ख) धड़ (ग) ऊँध्व और अधः शाखाएँ।

(क) सिर के मुख्य दो भाग हैं - (1) कपाल (2) आनन।

(1) कपाल - यह नौ अस्थियों से निर्मित है जिसके अन्दर मस्तिष्क सुरक्षित रहता है। ये अस्थियाँ निम्न प्रकार से व्यवस्थित हैं -

ललाटा सिर (1) - इससे मस्तिष्क बनता है।

पार्श्विक अस्थियाँ (2) - कपाल की सतह एवं अगल-बगल में भाग बनाती है।

पश्चकपालस्थि (1) - कपाल के पीछे व थोड़ा सा नीचे का भाग बनाती हैं।

शंखास्थि (2) - दोनों ओर कनपटियाँ बनाती हैं।

जतूकास्थि (1) - खोपड़ी के धरातल के नीचे सामने की ओर ललास्थि से मिलकर दोनों अक्षगहा बनाती हैं।

झण्णिकास्थि खोपड़ी के धरातल के सामने की ओर दोनों अक्षगुहाओं के बीच में स्थित है और नासिका के ऊपरी दोनों अक्षगुहाओं के बीच में स्थित है और नासिका के ऊपरी दोनों सूराख बनाती है। इसके बहुत से छोटे-छोटे छिद्र हैं जिनमें होकर तन्त्रिकायें मस्तिष्क में आती जाती हैं।

(2) आनन - इसमें चैदह अस्थियाँ होती है।

1. ऊपरी जबड़ा मुंह के ऊपरी भाग में इनमें से प्रत्येक के आठ गड्ढे होते हैं जिनमें ऊपर के 16 दांत रहते हैं।

2. निचला जबड़ा मुंह के नीचे के भाग में इसमें भी 16 गड्ढे होते हैं जिनमें नीचे के 16 दांत रहते हैं।

3. गण्डास्थियाँ गालों में

4. तालू को अस्थियाँ तालू के पिछले भाग में

5. नासास्थियाँ नाक में

6. स्पंजी अस्थियाँ नाक के भीतरी भाग में

7. अश्रु अस्थि अश्रु से सम्बन्ध रखती हैं।

8. सीरिका अस्थि नाक से नथनों के बीच स्थित होती है।

(ख) धड़ गर्दन से लेकर जांघ तक का भाग घड़ कहलाता है। मध्य पट द्वारा इसके दो भाग स्पष्ट हो जाते हैं। -

(1) वक्ष

(2) उदर

वक्ष - इसमें मेरुदण्ड, पसलियाँ, उरोस्थि तथा स्कन्ध-मेखला सम्मिलित हैं।

(स) ऊध्व और अधः शाखाएँ - इन शाखाओं में बांहे तथा टांगे सम्मिलित हैं जिनको क्रमशः ऊध्व शाखाएं तथा अधः शाखाएं कहते हैं।

ऊध्व शाखाएं - इसकी अस्थियाँ निम्न प्रकार हैं -

संख्या	नाम	स्थान व कार्य
1	प्रगण्डिका	यह कोहनी तथा कंधों की बीच की हड्डी होती है।
2	बहिः प्रकोष्ठिका और अन्तः प्रकोष्ठिका	ये कोहनी से कलाई तक होती हैं।
8	मणिबंध अस्थियाँ	ये कलाई बनाती हैं।
10	करमास्थियाँ	प्रत्येक हाथ में पांच होती हैं जो हथेली बनाती हैं।
28	हस्त अंगुलीस्थियाँ	प्रत्येक हाथ में 14 होती हैं, जो अंगुलियाँ व अँगुठा बनाती हैं।

अन्य शाखा - इसमें निम्नलिखित अस्थियाँ हैं -

संख्या	नाम	स्थान व कार्य
1	अर्थिका	यह कूल्हे से घुटने तक जाती है। यह बहुत दुढ़ होती है क्योंकि शरीर का पूरा भाग इसी पर रहता है।
2	टांग की हड्डियाँ	ये दो हड्डियाँ हैं। ये घुटने से टखने तक चली जाती हैं।
1	पटेला	यह घुटने की हड्डी है और त्रिकोण आकार की होती है।
14	टारासल्स	प्रत्येक टांग में कुल 9 होती हैं जो टखना बनाती हैं।

10 मेटा टारसल्स

ये पांच अस्थियाँ हैं जो पद बनाती हैं।

24 फालनगस

ये प्रत्येक पद में 14 होती है जो अंगुली व अंगूठा बनाती है।

अस्थियों का विकास उम्र के साथ-साथ होता है। बचपन में ये कोमल होती है अतः सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

पेशीतन्त्र -

कंकाल तन्त्र पर जो मांस का आवरण होता है उसको पेशीतन्त्र कहते हैं। पेशियों में दो प्रकार की गति पाई जाती है (1) संकुचन (2) शिथिलन। पेशी का संकुचन शिथिलन भी दो प्रकार का होता है -

(1) ऐच्छिक, (2) अनैच्छिक

(क) ऐच्छिक पेशियाँ - कंकाल तन्त्र के समस्त भागों से सम्बन्धित होती है। ये अस्थि संधियों में गति उत्पन्न करती हैं, इनकी गति मस्तिष्क द्वारा नियन्त्रित होती है। इनमें अत्यन्त शक्ति होती है और तेजी से कार्य करती हैं। परन्तु थकावट भी उत्पन्न होती है।

(ख) अनैच्छिक पेशियाँ - इन पेशियों की गति धीमी परन्तु सदैव एक-सी रहती हैं। इनकी गति पर मस्तिष्क का कोई प्रभाव नहीं होता है। वे बिना रुके कार्य करती रहती हैं फिर भी थकान नहीं उत्पन्न होती है।

पेशी संरचना - पेशियाँ विभिन्न आकार की होती है। जिन अस्थियों के सहारे ये पेशियाँ जुड़ी रहती है उन्हीं के आकार की तरह इनका भी आकार होता है। प्रत्येक पेशी के मुख्य 3 भाग होते हैं। ऊपरी सिरा मूल कहलाता है, बीच का मोटा भाग तुन्द कहलाता है और बिचले हिस्से को निवेशन कहते हैं।

पेशियों का उपयोग तीन प्रकार से होता है -

(i) गति उत्पन्न करना। पेशियों के अभाव में व्यक्ति के लिए खाना, पीना, दौड़ना, हंसना, बोलना, देखना आदि सभी कार्य असम्भव हो जाय।

(ii) आसन को स्थिर रखना।

(iii) उन भागों को सहारा देना जहाँ अस्थियाँ कम होती है जैसे आमाशय क्षेत्र।

पाचन तंत्र

शरीर की शक्ति को बनाये रखने के लिए तथा उसे क्रियाशील रखने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन द्वारा शरीर क्षति की पूर्ति निम्न प्रकार से करता है:

1. भोजन को अत्यन्त सूक्ष्म कणों में परिवर्तित करके इस योग्य बनाना जिससे वह पाचक यंत्रों में से सरलता से गुजर सके।

2. पाचक रसों की सहायता से पाचक युक्त बनाना।

3. रक्त इस सार तत्व को लेकर परिसंचरण द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग में पहुंच कर उन भागों का पोषण करता है।

इस समस्त क्रियाओं को मिलाकर ही पाचन क्रिया कहते हैं। यह सम्पूर्ण पाचन क्रिया एक ही अंग द्वारा होती है जिसे पोषण नलिका कहते हैं। पोषक नलिका लगभग 9 मीटर लम्बी होती है और मुख से प्रारम्भ होकर गुदा तक

चली जाती है। इसका व्यास सर्वत्र एक-सा नहीं होता है। सर्वप्रथम यह मुख से प्रारम्भ होती है और मुखगुहा में यहां की ग्रन्थियों से रस ग्रहण करती है। मुख के पीछे की ओर जाकर यह एक कीप का आकार ग्रहण कर लेती है। इसे ग्रसनी कहते हैं। इसके बाद यह सकरी नली में परिवर्तित हो जाती है। यह 40 सेमी० लगभग होती है। इसे ग्रास नली कहते हैं। यह श्वास नली के पीछे रहती है। इसके बाद मध्य पट से गुजरती हुई आमाशय के रूप में फैल जाती है। यह 20-30 सेमी० लम्बी होती है। आमाशय दूसरे सिरे पर फिर सकरा हो जाता है और सुद्रान्त प्रारम्भ होता है। यह 25 सेमी० तक अर्धचन्द्राकार होकर जाता है। इसमें अग्नाशय ग्रन्थि होती है। यही यकृत तथा उदर की रस नलिकायें आकार खुलती हैं। आगे चलकर क्षुदान्त उदर में मुड़ी हुई स्थिति में रहती है और आगे की मोटी नली में खुलती है जिसे बृहदान्त 2 मीटर लम्बी तथा 6 सेमी० चौड़ी होती है। बृहदान्त का अन्तिम सिरा मलाशय है जो गुदा में खुलता है।

श्वसन तंत्र के दो रूप होते हैं:-

1. वायु को भीतर खींचना अर्थात् प्रश्वसन,
2. वायु को पुनः शरीर से बाहर निकाल देना अर्थात् निःश्वसन।

प्रश्वसन में आक्सीजन गैस वायु के साथ शरीर में प्रवेश करती है। व्यर्थ पदार्थों को जलाने की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न पदार्थ मुख्यतः कार्बोनिक एसिड गैस होती है। यह गैस रक्त के साथ वापस आकर उसी मार्ग से बाहर निकल जाती है जिस मार्ग से ऑक्सीजन अन्दर आती है। इस प्रकार श्वसन तंत्र की क्रिया में जो मुख्य अंग भाग लेते हैं उनको मिलाकर श्वसन तंत्र कहते हैं। इस तंत्र के 5 अंग हैं -

1. मुख गुहा
2. नासागुहा
3. कण्ड
4. श्वास नली
5. फेफड़े

मुखगुहा - फेफड़े तक वायु जाने के लिये दो मार्ग हैं मुख एवं नासिका। परन्तु नासिका ही इसके लिए है। नाक में दो छेद होते हैं जिसे नासाद्वार कहते हैं। इन छिद्रों के भीतर बराबर दो मार्ग हैं। इनमें बाल भी होते हैं जो छननी का काम करते हैं। भीतरी भाग में चिपचिपा पदार्थ होता है। यदि कोई जीवाणु भीतर पहुंच जाता है तो इससे चिपक जाता है और भक्षककाणु इन्हें भक्षण कर लेते हैं। इस प्रकार छनी व शुद्ध वायु रक्त कोशिकाओं से गुजरती है जिसे वह गरम हो जाती है और उसका ताप शरीर के ताप के बराबर हो जाता है, दोनों नासा गुहाएँ आगे मिलकर एक नली बन जाती है और ग्रसनी में खुलती है। ग्रसनी से गुजरती हुई वायु कण्ड में आती है जहाँ से श्वास नली में प्रवेश करती है।

कण्ड - यह स्वांस नली के ऊपरी हिस्से में स्थित होता है। यहाँ एक कण्ड द्वार होता है जो ढक्कन का काम करता है और भोजन को श्वास नली में जाने से रोकता है। कण्ड के स्वर-रज्जु या तार होते हैं। वायु द्वारा इन तारों के स्पन्दन से ही स्वर उत्पन्न हो जाते हैं।

श्वास नली - इसकी लम्बाई 12-1 सेमी० तथा चौड़ाई 2.5 सेमी० होती है। इस नली के अन्दर पक्षाम होते हैं जो श्वास को छानते रहते हैं। यदि धूल के कण अथवा भोजन आदि के कण किसी प्रकार यहाँ पहुंच जाते हैं तो ये उत्तेजित हो

जाते हैं और खांसी आने लगती है और जब तक वस्तु निकल नहीं जाती ये क्रियाशील रहते हैं। श्वास नली गली से होती हुई वक्ष में जाती है। यहाँ इसके दो भाग हो जाते हैं। प्रत्येक भाग को श्वसनी कहते हैं। यह प्रत्येक श्वसनी फेफड़े में जाती है और कई शाखाओं में विभक्त हो जाती है।

फेफड़े -फेफड़े श्वसन क्रिया के प्रधान अंग है जो वक्ष के दोनों ओर के पिंजरो में सुरक्षित रहते हैं। इसका रूप शहद के छत्ते ऐसा होता है। फेफड़े में वायु प्रणालियाँ तथा रक्त प्रणालियाँ दोनों होती हैं। प्रत्येक वायु प्रणाली व उसकी शाखाओं के साथ फेफड़े की धमनी व उसकी शाखायें या रक्त कोशिकायें चलती रहती हैं। इस प्रकार सूक्ष्म वायु नलिकाओं के साथ ही साथ रक्त कोशिकायें फैली रहती हैं। इन कोशिकाओं में अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिए आता है। वायु कोशों की वायु तथा इन कोशिकाओं में रहते हुए रक्त के बीच में केवल सूक्ष्म अवरोध होता है और इसके अन्दर से वायु विसरण सरलता से हो जाता है। अशुद्ध रक्त में स्थित लाल कणिकाओं में पाये जाने वाले हीमोग्लोबिन के शक्तिशाली आकर्षण से वायु में स्थित ऑक्सीजन गैस छनकर रक्त में मिलती है और रक्त का रंग फिर से चमकीला बना देती है। रक्त स्थित कार्बनडाई ऑक्साइड तथा अन्य विकार इसी प्रकार झिल्लियों में से छन कर वायु कोशों में चले जाते हैं। वायु नलियाँ इन कोशों में इस प्रकार अशुद्ध हुई वायु को लेकर श्वसन नली में होती हुई नसिका द्वारा बाहर फेंक देती हैं।

परिसंचरण तंत्र:

रक्त परिसंचरण का केन्द्र स्थल हृदय है। यह वह केन्द्र स्थल है जहाँ से शुद्ध रक्त शरीर में भेजा जाता है। शरीर में अशुद्ध हो जाने पर अशुद्ध रक्त को फिर इसी केन्द्र में लाया जाता है। शुद्ध होने के लिए उसे फेफड़ों में ले जाया जाता है। जहाँ से शुद्ध होकर वह पुनः इसी स्थल में आता है।

सर्वप्रथम शरीर में एकत्रित रक्त दोनों महाशिराओं द्वारा हृदय में लाया जाता है। सिर, ग्रीवा एवं बाहों आदि के ऊपरी भागों का अशुद्ध रक्त ऊर्ध्व महाशिरा द्वारा तथा शरीर के निचले भागों से अधोशिरा द्वारा दाहिने अलिन्द में आता है। दाहिने अलिन्द के संकुचित होने पर त्रिवलनी कपाट खुल जाता है और रक्त दाहिने निलय में भर जाता है। इसके संकुचित होने पर फेफड़े की धमनी का कपाट खुल जाता है और रक्त उसमें चला जाता है। फिर वह कोशिकाओं में विभक्त हो जाता है। ये कोशिकायें कार्बनडाई-ऑक्साइड और जलवाष्प को छोड़ देती हैं और वायु नलिकाओं से शुद्ध ताजी ऑक्सीजन ग्रहण कर लेती हैं। यह शुद्ध रक्त कोशिकाओं से फेफड़े की शिराओं में आता है और प्रत्येक फेफड़े से दो शिरायें इस रक्त को लेकर हृदय की ओर आती हैं और इस प्रकार शुद्ध रक्त हृदय के बायें अलिन्द में पहुंच जाता है। बायें निलय के संकुचन पर झटके के साथ महाधमनी का कोष्ठ के बीच का द्वार खुलता है और रक्त झटके के साथ महाधमनी में प्रवेश करता है। यह सम्पूर्ण शरीर की केन्द्र धमनी है। यह धमनी मेरे शरीर में जाल फैलाती है और धमनी, शाखाओं, उपशाखाओं में विभक्त होती हुई कोशिकाओं के रूप में अशुद्ध रक्त हृदय के दायें अलिन्द में एकत्र होता है और फिर शुद्ध होने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ:

व्यक्ति के शरीर में कुल ऐसी नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के रस निकलते हैं। ये निम्न ग्रन्थियाँ हैं -

1. गल ग्रन्थि - यह ग्रन्थि गले में सांस नली के सामने होती है।
2. उपगम ग्रन्थि - ग्रन्थि गल ग्रन्थि के पास होती है तथा इसका कार्य व्यक्ति के स्वभाव को प्रभावित करना होता है। जब यह क्रियाशील अधिक होती है तब व्यक्ति में 'उत्तेजना अधिक होती है और यह उत्तेजित व्यवहार करता है।

3.पोष ग्रन्थि - यह मस्तिष्क में होती है। जब यह विकसित अधिक हो जाती है तो व्यक्ति की लम्बाई अधिक बढ़ जाती है तथा उसका स्वभाव क्रोधी हो जाता है। इस ग्रन्थि के द्वारा ही ग्रन्थियाँ नियंत्रित होती है। इस ग्रन्थि पर ही सम्पूर्ण शरीर का विकास निर्भर होता है।

4.उप वृक्क ग्रन्थि - इसके दो भाग होते हैं। बाह्य तथा आंतरिका। बाह्य भाग के कम विकसित होने पर व्यक्ति उदासीन एवं कमजोर दिखायी देता है परन्तु जब आंतरिक भाग कम क्रियाशील होता है तो व्यक्ति में सक्रियता एवं उत्तेजना कम हो जाती है।

5.प्रजनन ग्रन्थि -इस ग्रन्थि पर व्यक्ति के यौन सम्बन्धी गुण निर्भर होते हैं। यौन क्रियाओं पर इस ग्रन्थि की रस की कमी या अधिकता का प्रभाव पड़ता है।

उत्सर्गी तन्त्रः

इस तंत्र का कार्य शरीर से अनावश्यक तत्वों को बाहर कर देना। इसको निकालने के लिए निम्नलिखित विशेष अंग होते हैं।

1.वृहदांत - भोजन का अनपचा पदार्थ जो शरीर के लिए निरर्थक होता है, निकाल देती है।

2.फेफड़े - कार्बन डाई ऑक्साइड को तथा वष्प के रूप में परिवर्तित जल को निःश्वसन द्वारा निकालते हैं।

3.गुर्दे -मूग के रूप में जल, यूरिया, यूरिया एसिड व लवण को निकालते हैं।

4.त्वचा - जल, कुल निरर्थक लवण, यूरिया, कार्बन हाइऑक्साइड आदि पदार्थों को पसीने के रूप में बाहर निकालती हैं।

जननीय तंत्रः

इस स्तम्भ में वंशानुक्रम का वर्णन किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न होता है। इस भिन्नता का कारण वंशानुक्रम तथा पर्यावरण की भिन्नता होती है। वंशानुक्रम व्यक्ति का निर्माण करता है तथा उसको जीवशास्त्रीय दाय प्रदान करता है। माता पिता जैसे होते हैं वैसे ही उनके बच्चे होते हैं। बुद्धिमान माता-पिता की संतान प्राय बुद्धिमान तथा मूर्ख माता-पिता की संतान प्रायः मूर्ख होती है। परन्तु यह सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है क्योंकि व्यक्ति जैसे का तैसा नहीं होता है। यह भी सम्भव है कि मूर्ख माता पिता की संतान बुद्धिमान तथा बुद्धिमान माता पिता की संतान मूर्ख हो। अतः पर्यावरण के प्रभाव को भी किसी भी स्थिति में दृष्टि ओझल नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दो महान शक्तियाँ है जो व्यक्ति ये निर्माण एवं विकास में अपना प्रभुत्व रखती हैं।

1. वंशानुक्रम का अर्थ-

आनुवांशिकता शब्द की व्याख्या -

व्यक्ति जिन गुणों एवं विशेषताओं को अपने वंश से प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें आनुवांशिकता विशेषतायें होती हैं। अर्थात् जिस प्रक्रिया द्वारा वह शारीरिक व मानसिक विशेषतायें प्राप्त होती है उसे आनुवांशिकता कहते हैं।

रूथ, वेनेडिक्टः आनुवांशिकता का अर्थ माता-पिता से उनकी सन्तानों में विविध गुणों का संचरण है।

BENEDICT, RUTH : Heredity is the transmission of traits from parents to off springs

फेयरचाइल्ड, एच0पी0: आनुवांशिकता का अर्थ माता-पिता से उनकी सन्तानों में शारीरिक (जन्मजात मनोवैज्ञानिक सहित) गुणों का संचरण है।

FAIRCHILD, H.P. : Heredity means the transmission of physical traits (including innate psychological) from parents to off springs.

Pt in C p – Heredity

Pt – Parental traits, CP – Child personality

The process through which parental traits are brought in child's personality is known heredity.

जिस विधि के द्वारा माता-पिता के गुण बालक के व्यक्तित्व में लाये जाते हैं, उसे आनुवांशिकता कहते हैं।

हेरीडिटी शब्द की व्याख्या -

H – Human life

E – Emotions

R – Reasoning

E – Explaining capacity

D – Developmental traits

I – Integrating power

T – Talent temperament

Y – Yielding

वंशानुक्रम का अर्थ उन गुणों से होता है जिन्हें बच्चा अपने माता-पिता से जन्म से ही प्राप्त करता है। हर जीव की उत्पत्ति कोष्ठ से प्रारम्भ होती है। प्रत्येक कोष्ठ में 48 पितृसूत्र होते हैं। इनमें अने पितृक होते हैं। पितृक द्वारा की पैतृक विशेषतायें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती हैं।

यह हस्तांतरण लैंगिक समागम द्वारा ही सम्भव होता है। जब माता पिता में लैंगिक समागम होता है तो पिता के शुक्र कोष्ठ माता के अण्ड कोष में प्रवेश करते हैं। उसी समय गर्भ सम्भव होता है जिसे भ्रूण कहते हैं। इसमें वे सभी गुण शुक्राणु के द्वारा आ जाते हैं जो माता-पिता में होते हैं। इन्हीं गुणों को वंशानुक्रम कहते हैं।

रथ वेनीडिक्ट का विचार है कि वंशानुक्रम का अर्थ माता-पिता से उनकी संतानों में विविध गुणों का संचरण होता है। यूनिसकों के अनुसार माता-पिता और उसके पूर्वजों के जो लक्षण या गुण हमें शारीरिक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुये हैं उन्हें जैविक विरासत या वंशानुक्रम कहते हैं। कान-क्लिन के अनुसार जीवाणु संगठन के कुछ निश्चित तत्वों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में निरन्तरता को वंशानुक्रम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

2. जैविक संरचना- अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार बालक में माता-पिता से उनके गुणों का संचरण होता है। इसको समझने के लिए जीव रचना को समझना आवश्यक है। व्यक्ति का शरीर अनेक कोष्ठों से बना है। ये कोष्ठ शरीर के प्रत्येक अंग में पाये जाते हैं और शरीर को क्रियाशील बनाते हैं। भ्रूण की रचना युक्त से होती है। युक्त का निर्माण पुरुष के शुक्राणु तथा स्त्री के अण्ड के मिलने से बनता है। पुरुष स्त्री के लैंगिक समागम से पुरुष का शुक्र गर्भाशय में आता है और दोनों का मिलाप होता है जिसके परिणाम स्वरूप निषेचन क्रिया सम्भव होती है और भ्रूण का निर्माण होता है। शुक्र तथा अण्ड दोनों में विशेष गुण होते हैं अतः वे भ्रूण में आ जाते हैं। गर्भ पूरा होने पर बच्चे का जन्म होता है।

पुरुष में शुक्राणु तथा स्त्री में अण्ड की उत्पत्ति जनन ग्रन्थि से होती है। प्रत्येक मासिक धर्म में डिम्बग्रन्थि से एक-एक डिम्ब ग्रन्थि तैयार होती है। यह डिम्ब प्रणाली में आ जाता है। इस प्रक्रिया को कहते हैं। यद्यपि प्रत्येक स्त्री-पुरुष

संसर्ग में अनेकों शुक्राणु बाहर आकर डिम्ब में मिलते हैं परन्तु उनमें केवल एक ही डिम्ब प्रणाली में उपस्थित डिम्ब से मिलता है तभी नया जीवन प्रारम्भ होता है। इस निषेचित अण्ड में 46 (क्रोमोसोम्स) पिशसूत्र होते हैं जो आधे माता तथा आधे पिता के होते हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों के डिम्ब तथा शुक्राणु में 23-23 क्रोमोसोम्स होते हैं तथा प्रत्येक क्रोमोसोम्स में 40-100 तक जीन्स होते हैं। जीन्स ही माता-पिता के गुणों को बालक में ले जाते हैं। बालक का रंग, रूप, लम्बाई, चौड़ाई, बनावट आदि इसी आधार से निश्चित होती है।

गाल्टन का जीव-सांख्यिकी नियम- गाल्टन ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होने वाले गुणों का सांख्यिकीय अध्ययन किया। उन्होंने गुणात्मक पैमाने का वंशानुक्रम को समझने के लिए विकास किया। गाल्टन के नियम के अनुसार माता-पिता का आनुवांशिक गुणों में योगदान आधा होता है। उनमें से प्रत्येक का अंशदान चौथाई होता है। माता पिता के माता पिता का दान बालक में सोलहवां होता है। अर्थात् बालक में सभी गुण माता पिता से ही नहीं आते हैं बल्कि दादा-दादी, नाना-नानी तथा परदादा परदादी, परनाना, परनानी आदि के गुणों का भी उसमें समावेश होता है।

4. वंशानुक्रम के नियम - वंशानुक्रम के 3 मुख्य नियम माने जाते हैं -

(1) समान-समान को जन्त देता है

(2) भिन्नता का नियम

(3) प्रत्यागमन

(1) समान-समान को जन्म देता है - वंशानुक्रम का यह सर्वमान्य एवं सतप्रतिशत सत्य नियम है कि अपने ही अनुरूप एवं समान जीव का विकास होता है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार के माता पिता होते हैं उनकी सन्तान भी इन्हीं विशेषताओं से परिपूर्ण होती है। शारीरिक विकास पर वंशानुक्रम का विशेष प्रभाव पड़ता है। गोरे माता पिता की सन्तान गोरी तथा काले माता पिता की सन्तान काली होती है।

(2) भिन्नता का नियम - संतान पूर्णतया माता-पिता के समान नहीं होती है उसके रंग रूप तथा अन्य शारीरिक बनावट में भिन्नता पायी जाती है। इस भिन्नता का कारण विभिन्न पितृत्व का सम्मिलन होता है। अर्थात् माता-पिता के पितृत्व अपनी अलग विशेषताओं को संतान में स्थान ग्रहण करते हैं जिसके कारण बालक में भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। माता-पिता की संतानों में भी भिन्नता होती है जिसका कारण प्रमुख और गौण पितृत्व के गुण होते हैं।

(3) प्रत्यागमन - वंशानुक्रम का एक नियम यह भी है कि प्रतिभाशाली माता-पिता की संतान कम प्रतिभाशाली होने की प्रवृत्ति तथा निम्न कोटि के माता-पिता की संतान कम निम्न कोटि की होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यह प्रवृत्ति सदैव नहीं होती है बल्कि कुछ परिस्थितियों में ही घटित होती है।

माता-पिता जो प्रतिभाशाली होते हैं उनके माता पिता के बीजकोष उनको प्रतिभा शाली बनाते हैं जब उनके बीजकोषों का समागम होता है तो बुद्धिमान बालक का जन्म होता है। परन्तु सदैव माता और पिता अथवा उनके दादा-दादी आदि प्रतिभावान नहीं हुआ करते हैं। अतः जब पितृत्व प्रतिभावान एवं कम प्रतिभावान से मिलते हैं तो निम्न कोटि के गुणों का बालक में प्रादुर्भाव हो जाता है। जिसके कारण बालक माता-पिता के सामान प्रतिभावान नहीं होता है। इसके विपरीत निम्न कोटि के माता-पिता के बीच कोष या पितृत्व उनसे अच्छे हो सकते हैं जिनके कि वे बने हैं।

मेण्डल का सिद्धान्त - मेण्डल के सिद्धान्त में समानता तथा विभिन्नता पर प्रकाश डाला गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि एक ही माता-पिता की संतान में माता-पिता के बहुत कुछ समानता होते हुये भी भिन्नता होती है। इस प्रकार आपस में भाई-बहनों में भी समानता तथा विभिन्नता के तत्व एक साथ विद्यमान रहते हैं। इसमें कुछ लक्षण माता के तथा कुछ लक्षण पिता के मिलते हैं। पर कुछ लक्षण ऐसे भी होते हैं जो किसी में नहीं मिलते हैं। पर ये गुण बालक अपने दादा परदादा से ग्रहण करता है। आनुवांशिक लक्षणों को माता-पिता के सन्तान में आने की रीतियों तथा किसी एक विशेष आनुवांशिक लक्षण की उपस्थिति या अनुपस्थिति के कारण अध्ययन किया है।

मेण्डल आस्ट्रेलिया के रहने वाले एक ईसाई मठ के पादरी थे। उन्होंने बाग की हरी मटर पर अनेक परीक्षण किये, जिनके निष्कर्ष मेण्डलवाद के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं परीक्षणों के आयाम पर बाद में चूहों, बिल्लियों पर भी परीक्षण किये गये। उन्होंने अपने प्रयोग के समय एक समय में एक ही आनुवांशिक लक्षण पर ध्यान दिया। आपने फूल के रंग पर ध्यान रखते हुए देखा कि यदि एक लाल फूल वाले पौधे में सफेद फूल वाले पौधे से परागण कराया जाता है तो उन फूलों के बीज से उगने वाले पौधों के फूल लाल ही होंगे। सफेद फूल न निकल कर लाल ही फूल निकलते हैं इसी भेद की खोज को मेण्डल ने आगे बढ़ाया। उन्होंने इस बार लाल फूलों में ही आपस में पर-परायण कराया और इन फूलों से बने हुए मटर के बीजों को इकट्ठा किया। उन्होंने अगली फसल में इन बीजों से जो पौधे उगाये तो देखा कि इस बार इन पौधों में केवल लाल ही फूल नहीं निकले वरन कुछ सफेद फूल भी निकले। इन प्रयोगों को मेण्डल ने आठ वर्षों तक किया और हर बार यही देखा कि जब लाल और सफेद फूलों में पर-परायण कराया जाता है तो पहली पीढ़ी में सारे फूल लाल और दूसरी पीढ़ी में लाल और सफेद दोनों रंग के फूल निकलते हैं। उन्होंने यह भी देखा कि हर बार दूसरी पीढ़ी में लाल फूलों तथा सफेद फूलों में 3 और 1 का अनुपात होता है। इन प्रयोगों से मेण्डल को यह आशंका हो गयी कि पहली पीढ़ी के बीजों में फूलों के लाल तथा सफेद दोनों ही रंगों के लक्षण होते हैं ये अशुद्ध अर्थात् होते हैं। परन्तु लाल रंग अधिक प्रबल होने के कारण सफेद रंग को छिपा या दबा या गौण बना लेता है इसी के परिणामस्वरूप पहली पीढ़ी के फूलों को केवल लाल रंग ही दिखाई देता है पर दूसरी पीढ़ी में कोई ऐसी क्रिया अवश्य होती है जब कि लाल तथा सफेद रंगों में लक्षण किए अलग-अलग हो जाते हैं। दूसरी पीढ़ी के तीन लाल फूलों में केवल एक शुद्ध और शेष दो संकर होते हैं।

इस प्रक्रिया को इस प्रकार भी समझ सकते हैं। एक लाल शुद्ध लाल (माता) और शुद्ध लाल (पिता) की संतान हैं जो उस रंग का वाहकाणु माता और पिता के समान प्राप्त हुआ। यदि इसे (वाहकाणु) - + मान लें तो उसमें + वाहकाणु है। इसी कारण एक शुद्ध सफेद फूल है उसके भी वाहकाणु सांस है। यदि हम सफेद और लाल को मिश्रित बो दें तो निम्न प्रकार की संतान उत्पन्न होगी।

इसी प्रकार मेण्डल ने अन्य लक्षणों जैसे तने की लम्बाई छोटाई, मटर की बहच चोल के झुर्रीदार तथा चिकनेपन आदि लक्षणों को लेकर प्रयोग किये। यहां लक्षण का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। लक्षण किसी जीव के गुण, स्वभाव या विशेषता को कहते हैं। यह विशेषता उसकी रचना आकार, रंग अथवा कार्य सम्बन्धी होते हैं। इसी प्रकार मानसिक तथा शारीरिक लक्षण भी होते हैं। उन्होंने हर बार जैसा पहली पीढ़ी में उन दो विपरीत लक्षणों में से एक छिप जाता है और दूसरी पीढ़ी में दोनों लक्षण तीन और एक के अनुपात में दृष्टिगोचर होते हैं।

एक प्रकार मेण्डल ने देखा कि पितर पीढ़ी में दो मौलिक किन्तु विपरीत लक्षणों में से केवल एक ही लक्षण प्रकट होता है दूसरा छिप जाता है। प्रथम पीढ़ी में सभी फूल लाल होते हैं दूसरे पीढ़ी में पर परागण से लाल और सफेद फूल तीन और एक के अनुपात में होते हैं।

इस प्रकार मेण्डल ने अन्य लक्षणों को अनेक प्रयोग किये जिनके ठोस आयाम पर उन्होंने निम्नलिखित नियमों की घोषणा की जिन्हें अब मेडीलियन नियम के नाम से पुकारते हैं।

मेण्डल के नियम -

(1) एकल लक्षण नियम या ला आफ यूनिट कैंक्टर्स इस नियम के अनुसार सभी एकल वंशानुक्रमक लक्षणों का गैमिटल में अलग-अलग प्रतिनिधित्व होता है। ये एकल लक्षण एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में अलग-अलग जाते हैं।

(2) प्रबल तथा गौण लक्षणों का नियम - इस नियम के अनुसार प्रथम पीढ़ी के पौधों में मौलिक लक्षण के एक जोड़े में से एक प्रबल या डॉमिनेन्ट तथा दूसरा गौण या रिसेसिव होता है। प्रथम पीढ़ी की सभी संतानों में केवल प्रभावी लक्षण ही प्रकट होता है और अप्रभावी या गौण लक्षण होते हुये भी छिपे या दबा रहता है।

(3) लक्षण पृथक्करण नियम या लाल आफ सैग्रीगेशन - इस नियम के अनुसार विपरीत लक्षणों के एक जोड़े में से केवल एक ही लक्षण गौमीट में पहुंच पाता है। जब पी 1 को कोई पौधा स्वयं पर्णगत किया जाता है तो द्वितीय पीढ़ी में कुछ लम्बे तने वाले तथा कुछ ठिगने तने वाले होते हैं। दोनों तीन एक के अनुपात में मिलते हैं।

मेण्डल को द्वितीय पीढ़ी से ही संतोष नहीं हुआ। द्वितीय पीढ़ी के सभी लम्बे पौधे वास्तव में एक प्रकार के नहीं होते हैं। इनमें 1/3 शुद्ध लम्बे तथा 2/3 अशुद्ध लम्बे होते हैं। परस्पर स्वयं-परागण के फलस्वरूप अशुद्ध लम्बे पौधे से लम्बे तथा ठिगने पौधे तीन और एक के अनुपात में पैदा होते हैं। इस प्रयोग से स्पष्ट है कि पी2 के सभी हाईब्रीड्स में केवल एक ही लक्षण प्रकट होता है किन्तु पी2 की उत्पत्ति में फिर इन लक्षणों का अलगाव हो जाता है। इससे लम्बे तथा ठिगने दोनों प्रकार के पौधे उत्पन्न हो जाते हैं।

(4) लॉ आफ फ्री एसोर्टमेंट अपव्यूहन - मेण्डल ने देखा कि जब दो जोड़ी लक्षणों का एक ही साथ क्रॉस किया जाता है जैसे गोल तथा पीली मटर × हरी तथा मुरीदार मटर तो उसके विपरीत लक्षणों का प्रत्येक जोड़ा स्वतंत्रता पूर्वक अपना प्रदर्शन करता है।

वंशागति क्रिया विधि - मेण्डल के समय केशिका को रचना का पूर्व ज्ञान न था जिससे आनुवंशिकता की अनेक क्रियाओं को ठीक से समझना असम्भव हो रहा था। मेण्डल अपने प्रयोग में बस इतना ही कह सके कि आनुवंशिक लक्षण गैमिट्स द्वारा पितर से संतान में जाते हैं परन्तु यह कैसे होता है अर्थात् केशिकाओं में क्या परिवर्तन अथवा क्रियायें होती हैं इसको न बता सके। आपकी मृत्यु के लगभग 49 वर्ष बाद टामस हन्ट मार्गन ने 1915 से 45 के बीच महत्वपूर्ण कार्य किया। इसके वंशागत क्रिया विधि का ठीक से पता लग गया। मार्गन की महत्वपूर्ण खोज आज की महत्वपूर्ण जीनवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

वंशसूत्र आनुवंशिक लक्षण को माता-पिता से संतान में ले जाते हैं और वंशसूत्रों की रचना एक विशेष प्रकार के रासायनिक पदार्थ से होती है। जिसे डी आक्सीराइ-ब्रोन्युक्लिक एसिड जिसे संक्षेप में डी0एन0ए0 कहते हैं। मार्गन, ब्रीडिल, बैटम वाटसन तथा किक आदि महावैज्ञानिकों ने पता लगाया कि आनुवंशिक लक्षणों का माता-पिता से संतान में ले जाने का कार्य डी0एन0ए0 के दो अत्यन्त छोटे-छोटे कण करते हैं। इन कणों को मार्गन ने जीन्स का नाम दिया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीन्स प्राणी के आनुवंशिक एकक है इनकी रचना डी0एन0ए0 से होती है।

प्रत्येक प्राणी में चाहे वह जन्तु हो या पौधा गुण सूत्रों की संख्या कामिक कोशिकाओं में निश्चित होती है जैसे, मनुष्य 46, बन्दर में 48, चूहे में 42, फ्रूट प्लाई ड्रोसोकिला में 8, प्याज में 16, आम में 144, स्ट्रोबेरी में 14, मक्का में 20 होती है। अण्डे के शुक्राणु में यह संख्या आधी रह जाती है। अर्ध सूत्री विभाजन की प्रारम्भिक प्रावस्थाओं में प्रत्येक क्रोमोसोमस एक अन्य क्रोमोसोमस से चिपट कर समजात क्रोमोसोमस का एक जोड़ा बना लेते हैं। अर्ध सूत्री विभाजन में आगे चलकर प्रत्येक समजात जोड़े का एक साथी एक संतति कोशिका में और दूसरा दूसरी संतति कोशिका में चला जाता है, तभी तो संतति कोशिकाओं में क्रोमोसोमस की संख्या अब आधी

रह जाती है। प्राणी की कामिक कोशिकाओं में फिर से वहीं संख्या लाने के लिए गैमिप्स का मिलन या निषेचन होना आवश्यक है। निषेचन के बाद ही वैसे ही समजात जोड़े बन सकते हैं। इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रत्येक समजात जोड़े में एक साथी शुक्राणु अर्थात् पिता से और दूसरा अण्डे से अर्थात् माता से आता है। यही कारण है कि संतान में माता तथा पिता दोनों के आनुवंशिक लक्षण होते हैं।

जीनवाद के आयाम पर मेण्डल के नियमों की व्याख्या -मेण्डल के नियम को जीनवाद के आयाम पर भली-भांति समझा जा सकता है।

एक गुण-प्रसंकरण और मेण्डल का पहला नियम - इसमें हम खरगोश के रंग पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। चूंकि कामिक कोशिकाओं में प्रत्येक आनुवंशिक लक्षण के जीन्स समजात क्रोमोसोम्स के जोड़े के दोनों साथियों में होते हैं। इसलिए यदि खरगोश के काले रंग को अंग्रेजी के आयाम B से अंकित करें, तो एक समजात क्रोमोसोम जोड़े के रंग के जीन्स BB बी0बी0 अंकित कर सकते हैं। इसी प्रकार सफेद खरगोश के रंग को WW लिख सकते हैं। यहाँ काला रंग प्रबल तथा सफेद रंग गौण है क्योंकि काला रंग सफेद रंग छिपा सकता है।

अब यदि काले खरगोश और सफेद खरगोश जनक में प्रसंकरण कराया जाय, तो इनमें प्रत्येक खरगोश दो प्रकार के गैमिट्स बनायेगा और चूंकि गैमिट्स में समजात क्रोमोसोम्स का एक ही (S) साथी जाता है। इसलिए काले खरगोश के प्रत्येक गैमिट को केवल ठ से और सफेद खरगोश के प्रत्येक गैमिट को केवल W से अंकित किया जायेगा। हम मान लेते हैं कि काला खरगोश नर है और सफेद माता तो हमको इनके गैमिट्स के हर प्रकार मिलने से बने हुए सारे खरगोश काले ही मिलेंगे। चाहे वे नर हों या मादा। यह काले ही क्यों मिलते हैं? इसमें काला रंग सफेद को छिपा लेता है। यदि प्रथम पीढ़ी के सारे काले खरगोश में ही प्रसंकरण कराया जाय, तो दूसरी पीढ़ी में काले और सफेद दोनों ही तीन और एक के अनुपात में मिलते हैं। मेण्डल को भी एक गुण प्रसंकरण में यही अनुपात मिला था। परन्तु इनमें से शुद्ध काला और शुद्ध सफेद और दो संकर होते हैं।

द्विगुण प्रसंकरण तथा मेण्डल का नियम - इस प्रकार के प्रयोग में हम अपना ध्यान दो विपरीत लक्षणों पर रखते हैं जैसे खरगोश के रंग के लक्षण तथा बालों के झबरेपन और छोटेपर को ले सकते हैं। इसमें हम दो प्रकार के खरगोश लेते हैं।

1. काले रंग तथा छोटे बालों वाला
2. सफेद रंग तथा झबरे बालों वाला

इन लक्षणों में काला रंग तथा बालों का छोटापन प्रभावी और सफेद रंग तथा बालों का झबरे पर प्रभावी है। यहाँ यदि काले रंग का B और सफेद रंग को W से तथा बालों के छोटेपन को R तथा झबरेपन को r से अंकित करते हैं तो काले छोटे बाल खरगोश की आनुवंशिक रचना 'BR''BR' और सफेद झबरे खरगोश की आनुवंशिक रचना 'br''br' होगी। इस प्रकार काले छोटे बालों वाले तथा सफेद झबरे खरगोश से मिल से पहली पीढ़ी के सारे खरगोश काले छोटे बालों वाले उत्पन्न होते हैं। क्योंकि इस पीढ़ी में केवल प्रभावी लक्षण का प्रदर्शन होता है। यद्यपि इनकी आनुवंशिक रचना में सफेदी तथा झबरेपन के जीन्स अवश्य होते हैं।

अपूर्व प्रभाविकता - मेण्डल के नियम के आयाम पर किये गये प्रयासों में यह देखा गया है कि दो विपरीत लक्षणों में से प्रायः एक लक्षण दूसरे को छिपा लेता है जिससे संकर प्राणियों में केवल प्रभावी लक्षण ही दृष्टिगोचर होता है। पर अनेकों उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें प्रभावी लक्षण का प्रदर्शन पूर्ण रूप से नहीं होता है। जिसको एक उदाहरण द्वारा भली-भांति समझा जा सकता है। ऐन्डालूसियन मुर्गी में जब काले रंग की मुर्गी का मेल सफेद

चित्तीदार रंग के मुर्गे से होता है तो जैसे काले बच्चे उत्पन्न होने चाहिये परन्तु ये नीले होते हैं। पहली पीढ़ी F में नीचे रंग की मुर्गी तथा मुर्गे के मेल से एक काला, एक सफेद चित्तीदार और दो नीचे बच्चे होते हैं जब कि वे काले होने चाहिए।

संखान से लिंग की वंशागति कार्य विधि - निषेचित अण्डे से भ्रूण विकास के उपरान्त नर बनेगा या स्त्री? संतान का लिंग निषेचन के समय ही निश्चय हो जाता है। जैसे लिंग का निर्णय निषेचन के समय तभी हो सकता है जब कि अण्डे दो प्रकार के हो या शुक्र दो प्रकार के हों-एक से नर तथा एक से स्त्री का जन्म होता है। कुछ प्राणियों में शुक्राणु दो प्रकार के होते हैं और कुछ में अण्डे दो प्रकार के। उदाहरणार्थ हम स्वयं मनुष्य को लेते हैं। मनुष्य की कामिक कोशिका में 46 क्रोमोसोमस होते हैं अर्थात् 23 समजात क्रोमोसोम जोड़े होते हैं। प्रत्येक समजात जोड़े के दोनों साथी हर प्रकार समान होते हैं परन्तु पुरुष में 22 समाज जोड़े समान साथी वाले और एक जोड़ज़ असमान साथी वाला होता है। सामान प्रकार के जोड़ों को आर्टीसोमस और असमान जोड़े को हेट्रोसोमस अथवा लिंग क्रोमोसोमस कहते हैं। यदि समान क्रोमोसोमस को 'x' से अंकित किया जाय और असमान को XY से तो लिंग क्रोमोसोमस के जोड़े को XY और अन्य जोड़ों को XX से अंकित करना होगा। इससे यह भी स्पष्ट है कि स्त्री में केवल XX अर्थात् समान जोड़े होते हैं। जिस समय वृषण में शुक्राणु उत्पन्न होंगे अर्थात् अर्ध सूत्री विभाजन तथा समजात जोड़े में पृथक्करण होगा उस समय XY समजात जोड़े से दो प्रकार के शुक्राणु बनेंगे-एक में X और दूसरे में Y क्रोमोसोमस होंगे अर्थात् ये एक प्रकार के होंगे। निषेचन के समय यदि ग् क्रोमोसोमस वाला शुक्राणु अण्डे से मिलेगा तो जायगाट बनेगा और मादा को जन्म देगा। इसके विपरीत क्रोमोसोमस वाले शुक्राणु द्वारा निषेचन से XY जायगाट अर्थात् नर का जन्म होगा।

लिंग-सहलग्न वंशागति - कुछ ऐसे भी लक्षण होते हैं जो लिंग क्रोमोसोम से सहलग्न रहकर पीढ़ियों तक चलते चले जाते हैं। ऐसे लक्षण प्रायः अप्रभावी तथा इनके जीन्स लिंग क्रोमोसोमस में स्थित होते हैं। मनुष्यों में रतौथी, रंग अन्धापन तथा हिमोफिलिया लिंग सहलग्न रोग हैं। हीमोफीलिया रोग सदा पुरुषों में होता है परन्तु स्त्रियों द्वारा पुत्रों में पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। इस रोग में चोट लगने पर रक्त का धक्का नहीं बनता वरन बहता ही रहता है यहां तक कि मृत्यु हो जाती है।

यूजेनिकस तथा मानव वंशागति - मेण्डल के नियम तथा आनुवंशिकता के सिद्धान्तों के आयाम पर मानव समाज में अच्छे लक्षणों को प्रोत्साहन देकर अश्लील लक्षणों के कलंक को दूर करके, समाज और जाति के स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। इस दिशा में हमें पहले मनुष्य के आनुवंशिक लक्षणों का अध्ययन करना होगा फिर इनकी वंशागत क्रिया विधि का। इसके बाद अच्छे लक्षणों की पीढ़ी पर कायम रखने, उन पर वातावरण के प्रभाव तथा उन्हें और अधिक उपयोगी बनाने के ढंगों का प्रयत्न करना होगा। नियोजित विवाहों द्वारा इनका अध्ययन भलीभांति हो सकता है परन्तु ऐसे विवाहों तथा कई पीढ़ियों तक किसी एक विशेष लक्षण की वंशागति का अध्ययन सम्भव नहीं। अतः हमें एक समाज अथवा कुल के इतिहास से आनुवंशिक लक्षणों के पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाह की सहायता लेनी होती है। आनुवंशिकता के ज्ञात सिद्धान्तों का प्रयोग करते हुए मानव समाज को ऊँचा उठाने का अध्ययन जीव विज्ञान की एक शाखा है इसके साथ ही साथ मानव जाति के उन लक्षणों के अध्ययन को अपजननिकी कहते हैं। इनसे जाति का हास होता है अर्थात् उसमें अश्लीलता आती है। सजनानिकी ही अजनानिकी के प्रभाव को समाप्त करने का एकमात्र उपाय है।

सुजननिकी तथा मानव वंशागति को भली प्रकार समझने के लिए हमें मनुष्य के कुछ वंशागत विशेषकों तथा कुल के इतिहास का अध्ययन करना होगा। मानव विशेषक चार प्रकार के होते हैं -

(1) रचनात्मक - शरीर का आकार कद, त्वचा, बालों तथा नेत्रों के रंग, बालों का विन्यास आदि लक्षण इसके अन्तर्गत आते हैं।

(2) क्रियात्मक-शारीरिक बल, रुधिर वर्गीकरण, प्रजनन क्षमता, रोगों के प्रति प्रवृत्ति आदि लक्षण क्रियात्मक होते हैं।

(3) मानसिक - इसमें बुद्धि, क्षीण मानसिकता आदि लक्षण है।

(4) असाधारण -इसमें रजकहीनता कोढ़, रंग अन्धापन, रतौंधी आदि आते हैं।

(1) रचनात्मक - मेण्डल के नियम के अनुसार रचनात्मक विशेषताएं भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती है। इसमें शरीर का आकार, कद, त्वचा, बालों तथा नेत्रों का रंग आदि आते हैं। सामान्यतया देखा जाता है कि लम्बे माता-पिता की सन्तान लम्बी तथा छोटे माता-पिता की सन्तान छोटी होती है। जब कभी ऐसा नहीं होता तो यह अवश्य होता है कि उनके दादा, परदादा में कोई उस तरह के गुण वाला रहा होगा, इस प्रकार मेण्डल ने बताया कि वंशानुक्रम के द्वारा व्यक्ति में विशेषतायें हस्तांतरित होती रहती है इसमें प्रभावक तथा अप्रभावक जीन्स दूसरी पीढ़ी में 3 और एक के अनुपात में होते हैं जैसा आपने अपने प्रयोगों में सिद्ध किया है।

(2) क्रियात्मक - इसमें रुधिर वर्ग की प्रमुख है। जिस समय किसी प्राणी के रुधिर विदेशी प्रोटीन्स पहुंचते हैं, तुरन्त ही रुधिर उनका विरोध करने के लिए ऐसे पदार्थ उत्पन्न करता है जो विदेशी प्रोटीन्स को निष्क्रिय बनाने का प्रयत्न करते हैं। इन पदार्थों को जो ऐन्टीजेन्स कहलाते हैं। हमारी लाल रक्त कणिकाओं में दो प्रकार के ऐन्टीजेन्स A तथा B होते हैं। किसी व्यक्ति में दोनों ऐन्टीजेन्स होते हैं, किसी में एक और किसी में कोई नहीं। इनका होना या न होना कुछ जीन्स पर निर्भर करता है। किसी ऐन्टीजेन्ट की अनुपस्थिति में स्पष्ट है कि उसका विरोधी ऐन्टीवायटिक भी न होगा। इस प्रकार चाट प्रकार के मनुष्य होंगे और हर प्रकार के रक्त वर्ग से अंकित करते हैं। एक व्यक्ति जिसमें ऐन्टीजेन A और ऐन्टीबाडी B होता है। उसे रक्त वर्ग A की शाखा में रखा जाता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति जिनमें ऐन्टीजेन्ट B और ऐन्टीबाडी A होता है उसे वर्ग B में रखा जाता है। यह वर्ग जिनमें ऐन्टीजेन्ट B और A होते हैं परन्तु ऐन्टीबाडी नहीं होता है। उसे वर्ग AB में रखते हैं। यह व्यक्ति जिनमें कोई ऐन्टीजेन नहीं होता है परन्तु दोनों प्रकार के ऐन्टीबाडीज होते हैं उन्हे वर्ग O में रखा जाता है।

रुधिर वर्गों का महत्व गहरी चोट लगने या किसी अन्य कारण से रक्त की गम्भीर हानि होने पर रक्त चढ़ाने में है। अतः रक्त लेने और देने वाले दोनों ही व्यक्तियों के रक्त वर्ग की जांच होना आवश्यक होता है। वर्ग O वाले के रुधिर में किसी प्रकार का ऐन्टीजेन नहीं होता, अतः इसे निसंकोच किसी अन्य रुधिर वाले व्यक्ति के चढ़ाया जा सकता है। O वर्ग के सार्वजनिक रक्त दाता होते हैं। इसी प्रकार वर्ग AB के व्यक्तियों में दोनों प्रकार के ऐन्टीजेनों के कारण चारों वर्गों सार्वजनिक रक्त ग्राहक होते हैं। A और B में केवल एक प्रकार का ऐन्टीजेन होने के कारण A वर्ग अथवा उसी वर्ग वाले दाता का रक्त चढ़ाया जा सकता है। O वर्ग वाले व्यक्ति सार्वजनिक दाता तो होते हैं पर अपने ही वर्ग के ग्राहक होते हैं। किसी अन्य वर्ग के ऐन्टीजेन्स नहीं होते हैं। यदि किसी व्यक्ति का रुधिर वर्ग A है तो माता या पिता में एक का A वर्ग का होना अनिवार्य है। इसलिए माता-पिता तथा संतान के रक्त वर्गों की जांच करके ज्ञात होता है कि इस व्यक्ति के माता-पिता यही है या कोई और।

(3) मानसिक - बुद्धिमान व्यक्ति वह होता है जिसमें सोचने, कारण खोजने तथा स्मरण की शक्ति हो, पिछले अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता हो तथा भविष्य की कामना हो। इस प्रकार वृद्धि कई लक्षणों का संयोग है। किस व्यक्ति में किस लक्षण का कितना भार है, उसकी बुद्धि का स्तर बतायेगी। बुद्धिमता काफी मात्रा में आनुवंशिकता के आधीन है तथा मानव जाति की विभिन्न जातियों में इसका वितरण असमान है।

मनुष्य में सामान्य मानसिकता तथा बुद्धि का विकास जीन्स पर निर्भर है। किसी एक या दो जीन्स में त्रुटि आ जाने पर बुद्धि और मानसिकता में अन्तर आ जाता है। क्षीण मानसिकता ऐसी ही एक त्रुटि है। यह कई प्रकार की भी हो सकती है। एक प्रकार की मांगोलाएड क्षीण मानसिकता का लक्षण गोल सिर, चपटा चेहरा तिरछी आंख और नालीदार जीभ है। इसका कारण इस व्यक्ति की कोशिकाओं में एक अतिरिक्त क्रोमोसोम की उपस्थिति है। एक अन्य प्रकार की क्षीण मानसिकता के फेनिकलाइरुविक क्षीण मानसिकता कहते हैं जिसमें उस व्यक्ति में एक विशेष प्रकार के एण्डोसोम के संश्लेषण की क्षमता नहीं होती है और मानसिक त्रुटि उत्पन्न हो जाती है।

मनुष्यों में गंजापन एक आनुवंशिक लक्षण है यह प्रायः पिता से पुत्र में जाता है। स्त्रियों में शायद ही कभी होता हो। इसका प्रमुख कारण पुरुष का प्रभावी जीन होना है यह लिंग क्रोमोसोम से संलग्न न होकर भी इस पर प्रभाव डालता है।

2. वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव -

वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव कहां तक महत्वपूर्ण होता है इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। परन्तु यह निश्चित है कि बिना वंशानुक्रम के गुणों के बालक के गुणों का विकास नहीं हो सकता है। बुद्धि, स्वभाव, शारीरिक विशेषतायें आदि वंशानुक्रम से प्राप्त होती हैं। फ्रैंन्सिस गाल्टन ने वंशानुक्रम के प्रभाव को अपनी पुस्तक हेरिडिटी जिनिअस में दर्शाया है। इस पुस्तक की रचना सन् 1869 में की थी। उनके अनुसार योग्य व्यक्तियों के नाते रिश्तेदार भी योग्य होते हैं। जब तक योग्य पुरुष स्त्री से विवाह करता रहेगा तब तक संतान बुद्धिमान उत्पन्न होगी। गाल्टन का मत है कि हमारी समस्त शारीरिक एवं मानसिक विशेषतायें माता-पिता से प्राप्त होती हैं। गाल्टन में 30 कलाकारों के परिवारों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में उन्होंने पाया कि इन परिवारों के 66 प्रतिशत बालक कलाकार हैं जब कि सामान्य जनसंख्या में केवल 20 प्रतिशत ही कलाकार थे।

सन् 1912 में गोडार्ड के कालिकाक परिवार का अध्ययन प्रकाशित किया। कालिकाक नामक व्यक्ति अमरीका का रहने वाला था जिसने दो विवाह किये थे। एक विवाह क्रान्ति युद्ध में तथा दूसरा बाद में किया था उन दोनों पत्नियों में एक मंद बुद्धि की थी तथा दूसरी एक बुद्धिमान एवं पादरी की लड़की थी। इन दोनों से जो संतानें उत्पन्न हुईं उनमें काफी असमानता देखने को मिली। मंद बुद्धि की पत्नी से उत्पन्न संतानों की पीढ़ियों में कुल 480 में से 143 मंद बुद्धि के थे तथा 46 सामान्य पाये गये। शेष के विषय में कोई निर्णय न प्राप्त हो सका। उनमें 24 शराबी, 3 अपराधी, 3 मिर्गी के रोगी तथा 35 अनैतिक कार्य करने वाले थे। पादरी की लड़की से उत्पन्न कुल संतानों में से अधिकांश वकील, जज तथा व्यापारी थे।

इसी प्रकार ज्यूक तथा एडवर्ड परिवार के वंशजों का भी यही परिणाम प्राप्त हुआ। ज्यूक्स के 1200 वंशजों में से 440 शारीरिक बीमारियों से व्यथित थे। 310 वंशज दरिद्र तथा 130 अपराधी एवं 7 हत्यारे थे। इनमें आधे से अधिक स्त्रियां वेश्यायें थीं। जब कि एडवर्ड परिवार के 1394 में से 29 स्नातक, 13 कालेज का प्रधानाचार्य तथा संयुक्त अमेरिका का उपराष्ट्रपति था। कोई भी व्यक्ति अपराधी नहीं था।

कार्ल पियर्सन ने भी वंशानुक्रम के प्रभाव पर अनेक प्रयोग किये। उन्होंने इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि माता-पिता की (कद, आंखों का रंग, वर्ण, बालों की बनावट, स्वास्थ्य, आदि) शारीरिक विशेषताओं का प्रभाव बच्चों पर अवश्य ही पड़ता है। उन्होंने बताया कि वंशानुक्रम का प्रभाव पर्यावरण से सात गुना ज्यादा होता है।

उपलिखित अध्ययनों से पता चलता है कि व्यक्ति के विकास एवं उसकी मानसिक एवं शारीरिक विशेषताओं के निर्धारण में वंशानुक्रम का पूरा-पूरा हाथ रहता है। परन्तु यह बात शत प्रतिशत सत्य नहीं है जिस

प्रकार पेड़-पौधे बिना उचित मिट्टी एवं जलवायु के जीवित नहीं रह सकते हैं उसी प्रकार बिना उचित पर्यावरण के व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं हो सकता है।

(ख) मानव व्यवहार के अर्जित आकार -

मानव व्यवहार के सभी आयाम जन्मजात नहीं है। इनमें से अधिकांश व्यक्ति द्वारा सामाजिक संरचना के अन्तर्गत अर्जित किये जाते हैं। वह समाज से सहायता लेता है तथा सामाजिक दशायें व्यक्ति को सदैव प्रभावित करती रहती हैं। परिवार, स्कूल, सामाजिक आर्थिक दशायें, सांस्कृतिक विशेषतायें आदि व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। अर्थात् बाह्य पर्यावरण व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित एवं संचालित करता है अतः उसका ज्ञान प्राप्त करना सामाजिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है।

आनुवांशिकता का व्यक्तित्व पर प्रभाव-

व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशेषतायें आनुवांशिकता द्वारा प्रभावित होती है -

1. शारीरिक रचना - शरीर का आकार, कद, त्वचा, बालों तथा नेत्रों का रंग, लम्बाई, गठन इत्यादि आनुवांशिकता से प्रभावित होते हैं।
2. क्रियात्मक क्षमता - शारीरिक बल, रूधिर वर्गीकरण, प्रजनन, रोगों के प्रति संवेदनशीलता आदि क्रियात्मक लक्षण होते हैं जो आनुवांशिकता से प्रभावित होते हैं।
3. मानसिक विशेषतायें - बुद्धि, क्षीण-मानसिकता, मूर्खता, चतुराई, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक योग्यता आदि लक्षणों पर आनुवांशिकता का प्रभाव पड़ता है।
4. असामान्य गुण - इसमें रजकहीनता, कोढ़, रंग अंधापन, रतौंधी आदि सम्मिलित हैं। ये आनुवांशिकता द्वारा हस्तांतरित होते हैं।

6.4 सारांश

व्यवहार के विभिन्न आयामों को जानने का प्रयास किया गया है। समाज में विभिन्न प्रकार की प्रक्रियायें समानान्तर प्रसारित होती हैं। जिनमें व्यक्ति एक करता के रूप में उन प्रक्रियाओं को सकारात्मक अथवा नकारात्मक स्वरूप में अपनाता है। इसके साथ-साथ विभिन्न मण्डलों के माध्यम से वंशानुक्रम पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यवहार के विभिन्न आयामों को समझाइए।
2. स्नायु मण्डल की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एडलर, ए0, प्राब्लम्स ऑफ न्यूरोसिस, हारपर एण्ड रो न्यूयार्क, 1964
2. कोलमैन, जूलस वी., साइकोथेराप्यूटिक प्रिन्सिपल्स इन केसवर्क इंटरव्यूक अमेरिकन जर्नल ऑफ साइक्याट्री, 1951

3.आलपोर्ट, एफ.एच., सोषल साइकालोजी, हघटन मिफलिन कं0 वास्टन, 1925

सामूहिक व्यवहार

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 सामूहिक व्यवहार का अर्थ एवं परिभाषा

7.3 सामूहिक व्यवहार की प्रमुख विशेषताएं

7.4 सामूहिक व्यवहार के प्रकार

7.5 सारांश

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. सामूहिक व्यवहार का अर्थ एवं परिभाषाओं को जान सकेंगे।
 2. सामूहिक व्यवहार की प्रमुख विशेषताओं को जान सकेंगे।
 3. सामूहिक व्यवहार के प्रकारों को समझ सकेंगे।
-

7.1 प्रस्तावना

सामान्य रूप से व्यक्तित्व का विकास गर्भधारण की अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। बालक जब किशोरावस्था में प्रवेश करता है तब वह कुछ-कुछ परिपक्व होने लगता है। यह समय उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। परिपक्वता आने के साथ-साथ बालक के व्यक्तित्व में विभिन्न प्रकार के शारीरिक व मानसिक बदलाव होते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि व्यक्तित्व न तो पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक है और न तो पूर्णतः शारीरिक ही है। व्यक्तित्व इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

7.2 सामूहिक व्यवहार का अर्थ एवं परिभाषा

किसी उत्सव में एकत्रित भीड़, सिनेमाघर में आग लग जाने पर डर कर भागने वाले लोगों, किसी नगर में दंगा कर रहे लोगों इत्यादि के व्यवहार को सामूहिक व्यवहार कहा जाता है। इस प्रकार का व्यवहार अधिकांशतः अनायास व अननुमेय होता है। यह हमारे अपेक्षाकृत स्थायी व संरचित व्यवहार से भिन्न होता है। समाजशास्त्री सामूहिक व्यवहार का अध्ययन इसलिए करते हैं क्योंकि इससे सामाजिक व्यवस्था के बारे में नवीन अन्तर्दृष्टि प्राप्त

होती है। जिस प्रकार एक डॉक्टर को बीमारी का अध्ययन करके स्वास्थ्य के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार एक समाजशास्त्री सामाजिक समूहों में एकीकरण की प्रक्रिया को तभी भली-भांति समझ सकता है जबकि उनमें होने वाली खराबियों, तनावों एवं तीव्र परिवर्तनों को समझ सके।

सामूहिक परिस्थिति में व्यक्तियों के 'एक साथ' सम्मिलित आचरण या क्रिया को सामूहिक व्यवहार कहते हैं। विस्तृत अर्थ में जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए क्रिया करते हैं तो उसे सामूहिक क्रिया या व्यवहार कहते हैं। वास्तव में, समूह के लिए दो या दो से अधिक ऐसे व्यक्तियों को होना अनिवार्य है जो समूह के प्रति सचेत हैं। इसी दृष्टि से सामूहिक व्यवहार सामूहिक परिस्थिति में उन एकाधिक व्यक्तियों का व्यवहार है जिनमें कि एक सामान्य समूह का सदस्य होने की चेतना पाई जाती है। इस अर्थ में हमारा अधिकांश व्यवहार सामूहिक व्यवहार ही है क्योंकि यह समाज के अन्य सदस्यों, चाहे उनके साथ हमारे सम्बन्ध प्रत्यक्ष हैं चाहे अप्रत्यक्ष, द्वारा काफी सीमा तक प्रभावित होता है।

सामान्यतः सामूहिक व्यवहार स्थापित प्रतिमानों के टूट जाने की स्थिति के प्रति एक प्रतिक्रिया है। जब लोगों के सामने अप्रत्याशित संकट या विपत्ति पैदा हो जाती है तो उनके पास व्यवहार करने हेतु (अर्थात् उस संकट या विपत्ति के प्रति प्रतिक्रिया करने हेतु) स्थापित नियम या आदर्श नहीं होते, तो ऐसी स्थिति में वे इससे निपटने हेतु स्वयं तरीके निकाल लेते हैं। ये आकस्मिक तरीके ही कई बार हमारा सामान्य व्यवहार बन जाते हैं।

फैडरिको के अनुसार, "सामूहिक व्यवहार में अनगिनत घटनाएं निहित होती हैं। परन्तु सामान्यतः सभी प्रकार के सामूहिक व्यवहार अनायास (सहज), आपेक्षाकृत असंरचित, अननुमेय तथा व्यक्तिगत अन्तःक्रिया की उच्च मात्रा पर आधारित होते हैं।

फैडरिको ने सामूहिक व्यवहार को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है। परीक्षा कक्ष में समाजशास्त्र की परीक्षा दे रहे छात्र सामूहिक व्यवहार में संलग्न नहीं हैं क्योंकि इस स्थिति में उनका व्यवहार संस्थागत है। दूसरी ओर, छात्र संघ के कार्यालय के बाहर राजनीतिक नेता का भाषण सुनने हेतु एकत्रित वहीं छात्र सामूहिक व्यवहार का उदाहरण है। इस दूसरी स्थिति में उनका व्यवहार संस्थागत नहीं होता है। ब्राउन ने इस सन्दर्भ में ठीक ही कहा है कि सामूहिक व्यवहार में वह अन्तःक्रिया निहित होती है। जो संस्थागत नहीं होती। अन्य शब्दों में, सामूहिक व्यवहार की स्थिति में औपचारिक रूप से परिभाषित नियमों का अभाव पाया जाता है, सदस्यता का कोई निश्चित आधार नहीं होता, प्रायः इससे सम्बन्धित घटना अस्थायी प्रकृति की होती है तथा यह भी अप्रत्याशित रूप ले सकता है। दंगों को सामूहिक व्यवहार का उदाहरण माना जाता है। अमेरिका में दंगों के बारे में जो अध्ययन किए गए हैं उनसे पता चलता है कि वे अनियोजित व असंगठित होते हैं तथा उनका उद्देश्य किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करना नहीं होता है।

7.3 सामूहिक व्यवहार की प्रमुख विशेषताएं

सामूहिक व्यवहार की प्रकृति को इसकी निम्नांकित प्रमुख विशेषताओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. एकाधिक व्यक्तियों का व्यवहार:

सामूहिक व्यवहार सदैव ही एकाधिक व्यक्तियों का व्यवहार होता है अर्थात् इसमें व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की संख्या एक से अधिक होती है। यह समूह छोटे अथवा बड़े आकार का हो सकता है। उदाहरणार्थ, परिवार गोष्ठी, क्लब आदि छोटे समूह हैं, जबकि भीड़ आदि बड़े आकार के समूह हैं। पार्क तथा बर्गेंस के मतानुसार, एक छोटे समूह और भीड़ में केवल आकार और संख्या का ही अन्तर नहीं है। उदाहरणार्थ, परिवार के सदस्यों का सामूहिक

व्यवहार भीड़ के सामाजिक व्यवहार से इस कारण भिन्न नहीं है कि दोनों के आकार में भेद है, बल्कि इस कारण भी भिन्न है कि उनमें मानसिकता अर्थात् मानसिक धरातल पर भी स्पष्ट अन्तर पाया जाता है। परन्तु आलपोर्ट, यंग, मिलर और डा लार्ड आदि विद्वानों का मत है कि समूह की संख्या का सामूहिक व्यवहार पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

2. संकलन या एकत्रीकरण:

सामान्यतः जब सामूहिक व्यवहार हेतु एकाधिक व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो उसे हम संकलन या एकत्रीकरण कहते हैं। यह एकत्रीकरण आकस्मिक और औपचारिक दोनों रूपों में हो सकता है। फ्रीमेन, बार्कर, ब्लमर आदि विद्वानों के अनुसार आकस्मिक या औपचारिक एकत्रीकरण का भी प्रभाव सामूहिक व्यवहार पर पड़ता है। भीड़ और श्रोतागण के व्यवहार में पर्याप्त अन्तर इसी कारणवश पाया जाता है। साथ ही, एकत्रीकरण की दृष्टि से सामूहिक व्यवहार को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है - प्रथम, वह सामूहिक व्यवहार जिसमें समूह के सदस्य शारीरिक रूप से कभी भी एक स्थान पर एकत्रित नहीं होते हैं (जैसे जनसमूह, जनता, जाति आदि); द्वितीय, वह सामूहिक व्यवहार जिसमें समूह के सदस्य अनियमित और अस्थायी तौर पर एक स्थान पर शारीरिक रूप से इकट्ठा हो जाते हैं (जैसे भीड़ आदि); तथा तृतीय, वह सामूहिक व्यवहार जिसमें सदस्य समय-समय पर औपचारिक ढंग से एक स्थान पर एकत्रित होते हैं (जैसे चर्च आदि)। इन तीनों प्रकार के सामूहिक व्यवहारों में कुछ आधारभूत अन्तर देखने को मिलता है।

3. ध्रुवण या आकर्षण-शक्ति:

आकर्षण शक्ति सामूहिक व्यवहार की एक और उल्लेखनीय मनोवैज्ञानिक विशेषता है। इस विशेषता के आधार पर भी सामूहिक व्यवहार करने वाला समूह अपने सदस्यों का ध्यान किसी एक उत्तेजनात्मक वस्तु अथवा घटना के चारों ओर केन्द्रित करता है। वूलबर्ट ने इसी आकर्षण-शक्ति का प्रयोग सभी श्रोताओं के बीच नेता के प्रति आदान-प्रदान की विशेषता के लिए किया है। इसी प्रकार, आलपोर्ट के अनुसार भीड़ के सदस्य किसी एक सामान्य उत्तेजना की ओर ध्यान देते हैं और तदनुसार ही क्रिया करते हैं।

4. एकात्मीकरण या तादात्म्य:

एकात्मीकरण या तादात्म्य सामूहिक व्यवहार की एक और उल्लेखनीय विशेषता है। इसका तात्पर्य दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं, विचारों, भावनाओं आदि के साथ तादात्म्य कर उन्हें ग्रहण करना और स्थायी अथवा अस्थायी रूप से उसका एकात्मीकरण कर लेना अर्थात् अपना बना लेना है। इस सन्दर्भ में बेण्टले ने ठीक ही लिखा है। कि केवल कुछ व्यक्तियों के एक स्थान पर एकत्रित हो जाने से ही सामूहिक व्यवहार घटित नहीं होता है, अपितु इसके लिए यह आवश्यक है कि उन लोगों में समूह के प्रति अपनत्व की भावना हो और वे समूह के साथ एकात्मीकरण या तादात्म्य करने में सफल हों। एकात्मीकरण या तादात्म्य करने में सफल हों। एकात्मीकरण या तादात्म्य के आधार पर भी समूहों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है - प्रथम, वे समूह जिनके सदस्यों में पारस्परिक तादात्म्य कम होता है (जैसे श्रोतागण); द्वितीय, ऐसे समूह जिनके सदस्यों में तादात्म्य होता तो है, पर उसकी प्रकृति अस्थायी होती है (यथा भीड़); तथा तृतीय, वह सामूहिक व्यवहार जिसमें समूह के बीच तादात्म्य स्थायी रूप में देखने को मिलता है (यथा परिवार इत्यादि)।

5. विसरित एवं अस्पष्ट लक्ष्य:

सामान्यतः सामूहिक व्यवहार में लक्ष्य विसरित एवं अस्पष्ट होते हैं। ये लक्ष्य आत्मसम्मान प्राप्त करने तथा वंचना के प्रति नाराजगी से लेकर समाज को पुनः संगठित करने तक हो सकते हैं। सामूहिक व्यवहार में सहभागी लोग सहज रूप समें आदर्शों का निर्माण कर लेते हैं, और जो लोग इन्हें तोड़ते हैं उन्हें दण्डित करते हैं। लक्ष्य अस्पष्ट भी होते हैं। कई बार कुछ व्यक्ति आग में फंसे अन्य व्यक्तियों को बचाने के लिए अपनी जान जोखिम में डाल देते हैं। इसी प्रकार, किसी ऊँची इमारत में आग लग जाने पर मची भगदड़ के समय अनेक व्यक्ति अपने बचाव के लिए ऊपर से कूद जाते हैं।

6. अस्थायी प्रकृति:

सामूहिक व्यवहार सदैव अस्थायी प्रकृति का होता है। परन्तु इसके कुछ स्वरूप जैसे धुन अथवा सनक कुछ महीनों या वर्षों तक चल सकते हैं। क्योंकि सामूहिक व्यवहार में अधिकांश लक्ष्य अनियोजित एवं सहज रूप में विकसित होते हैं, इसलिए सामूहिक व्यवहार कभी भी अप्रत्याशित रूप ले सकता है।

7.4 सामूहिक व्यवहार के प्रकार

सामूहिक व्यवहार सामूहिक परिस्थिति में उन एकाधिक व्यक्तियों का व्यवहार है जिनमें कि एक सामान्य समूह का सदस्य होने की चेतना पाई जाती है। सामूहिक व्यवहार को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इसमें से कुछ प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं -

1. संगठित और असंगठित सामूहिक व्यवहार:

संगठन के आधार पर सामूहिक व्यवहार संगठित और असंगठित सामूहिक व्यवहार में विभाजित किया जा सकता है। असंगठित सामूहिक व्यवहार सामान्यतः अपने सदस्यों को अधिक समय तक एक सूत्र में बांधकर रखने तथा अपने समूह की संरचना बनाए रखने में असमर्थ होता है। इसके विपरीत, संगठित सामूहिक व्यवहार कुछ निश्चित सामाजिक नियमों द्वारा संचालित एवं नियन्त्रित होत है और इसीलिए इसमें अपेक्षाकृत अधिक स्थायित्व पाया जाता है। मैकडूगल के अनुसार संगठित सामूहिक व्यवहार की पांच विशेषताएं होती हैं - प्रथम, निरन्तरता (मुख्यतः भौतिक अथवा स्वरूपात्मक) की कुछ मात्रा का उसमें होना; द्वितीय समूह के सदस्यों के मस्तिष्क में समूह के स्वरूप, कार्य, उद्देश्य तथा क्षमताओं के सम्बन्ध में निश्चित और स्पष्ट विचार होना, तृतीय, समान या मिलते-जुलते अन्य समूहों के साथ उक्त समूह का परस्पर क्रियात्मक सम्बन्ध होना; चतुर्थ, कुछ निश्चित नियमों, आदर्शों मूल्यों आदि द्वारा समूह का व्यवहार नियन्त्रित होना; तथा पंचम, सदस्यों के कार्यों में श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण का होना।

2. प्राकृतिक और कृत्रिम सामूहिक व्यवहार:

प्रकृति के आधार पर सामूहिक व्यवहार को प्राकृतिक एवं कृत्रिम व्यवहार में बांटा जा सकता है। प्राकृतिक व्यवहार से तात्पर्य उन समूहों के व्यवहार से है जिनकी सदस्यता जन्मजात ही मिल जाती है (जैसे परिवार, जाति, वंश आदि)। इसके विपरीत, कृत्रिम सामूहिक व्यवहार से तात्पर्य उन समूहों के व्यवहार से है जिनके सदस्यों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए औपचारिक एवं निश्चित नियमों के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है (जैसे चर्च, मन्दिर या दफ्तर में व्यक्तियों का व्यवहार)।

3. आकस्मिक और इच्छाजन्य सामूहिक व्यवहार:

उत्पत्ति के आधार पर सामूहिक व्यवहार को आकस्मिक परिस्थितिजन्य तथा इच्छाजन्य व्यवहार में विभाजित किया जा सकता है। जब कोई समूह या उसमें होने वाला व्यवहार किसी आकस्मिक घटना के घटित हो जाने के

कारण जन्म लेता है तो उसके सदस्यों के व्यवहार को आकस्मिक सामूहिक व्यवहार कहते हैं (यथा भीड़-व्यवहार)। इसके विपरीत, इच्छाजन्य सामूहिक व्यवहार उस व्यवहार को कहते हैं जिसमें व्यक्ति अपने किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी ही इच्छा से समूह के जीवन में भाग लेता है और व्यवहार करता है। उदाहरणार्थ, अपनी इच्छानुसार पुण्य हेतु सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना।

4. नेता द्वारा संचालित तथा नेताविहीन सामूहिक व्यवहार:

सामाजिक जीवन में ऐसे अनेक सामूहिक व्यवहार होते हैं जो नेताविहीन सामूहिक व्यवहार होते हैं अर्थात् इसमें नेता की कोई भी स्थिति नहीं होती है। परन्तु अनेक सामूहिक व्यवहार नेता द्वारा संचालित, निर्देशित एवं नियन्त्रित होते हैं। उदाहरणार्थ, जब युद्ध क्षेत्र में सैनिकगण अपने कमाण्डर के आदेशानुसार शत्रु-पक्ष पर हमला करते हैं या किसी राजनीतिक दल के कार्यकर्ता अपने नेता के आदेशानुसार किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करते हैं तो उसे नेता द्वारा संचालित सामूहिक व्यवहार कहते हैं।

फ्रायड के अनुसार सामूहिक व्यवहार का अध्ययन करते समय हमें इस बात का भी ध्यान रखना अनिवार्य है कि व्यवहार नेता द्वारा संचालित है अथवा यह नेताविहीन है। उनका कथन है कि सामूहिकता में नेता आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। साथ ही, नेता द्वारा संचालित सामूहिक व्यवहार में व्यवस्था और निश्चितता अधिक पाई जाती है।

7.5 सारांश

सारांश के रूप में सामूहिक व्यवहार का अर्थ एवं परिभाषाओं को जानने का प्रयास किया गया है। इसके साथ-साथ सामूहिक व्यवहार की प्रमुख विशेषताओं तथा उसके प्रकारों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामूहिक व्यवहार से आप क्या समझते हैं? उसे परिभाषित कीजिए।
2. सामूहिक व्यवहार की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. सामूहिक व्यवहार के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एडलर, ए0, प्राब्लम्स ऑफ न्यूरोसिस, हारपर एण्ड रो न्यूयार्क, 1964
2. कोलमैन, जूल्स वी., साइकोथेराप्यूटिक प्रिन्सिपल्स इन केसवर्क इंटरव्यूक अमेरिकन जर्नल ऑफ साइक्याट्री, 1951
3. आलपोर्ट, एफ.एच., सोशल साइकालोजी, हघटन मिफलिन कं0 वास्टन, 1925

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण

इकाई की रूपरेखा

- 8.0 उद्देश्य
- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 सामाजिक प्रत्यक्षीकरण
- 8.3 सारांश
- 8.4 अभ्यास प्रश्न
- 8.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की परिभाषाओं एवं विशेषताओं को जान सकेंगे।
2. सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रियाओं तथा निर्धारकों से परिचित हो सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की परिभाषा, विशेषता, प्रक्रिया तथा निर्धारक तत्वों को बताया गया है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के द्वारा हम समाज के लोगों से आपसी अंतर्क्रिया करते हैं तथा उनकी विशेषताओं से अवगत होते हैं।

8.2 सामाजिक प्रत्यक्षीकरण

परिभाषाएं

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं-

आलपोर्ट के अनुसार “सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का अर्थ सामाजिक परिस्थिति के सम्बन्ध में व्यक्ति के सम्पूर्ण ज्ञान का विस्तार है।”

सीकोर्ड तथा बेकमैन ने सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया है कि “सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के दो प्रकरण हैं- प्रथम अनुभवात्मक प्रक्रिया पर वैयक्तिक और सामाजिक कारकों के प्रभाव तथा द्वितीय सामाजिक लक्ष्यों या वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रत्यक्षात्मक, संज्ञानात्मक अनुभवों का अध्ययन सम्मिलित है।”

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सामाजिक प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति की अनुभवात्मक प्रक्रिया को अनेक वैयक्तिक तथा सामाजिक कारक प्रभावित करते हैं। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के द्वारा सामाजिक परिस्थिति का

सामाजिक लक्ष्यों के प्रति व्यक्ति को प्रत्यक्षात्मक अनुभव होता है। एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के प्रति विचार, भावनाएँ तथा धारणाएँ निर्धारित करना मुख्यतः तीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

1. प्रत्यक्षीकरण करने वाले व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में निर्णय करते समय सूचनाओं की मात्रा क्या है?
2. दोनों व्यक्तियों के मध्य किस प्रकार की अन्तःक्रियाएँ हैं?
3. प्रत्यक्षीकरणकर्ता और दूसरे व्यक्तियों के मध्य सम्बन्धों की स्थापना किस मात्रा में हुई है?

व्यक्ति इन उपरोक्त परिस्थितियों के आधार पर प्रत्यक्षीकरण द्वारा दूसरे व्यक्ति के भाव, संवेग, लक्ष्य और अभिवृत्तियों आदि को जानने का प्रयास करता है। व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उसमें अनेक प्रकार के भौतिक और सामाजिक उद्दीपक होते हैं। इन उद्दीपकों के द्वारा परस्पर अन्तःक्रिया से व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है। भौतिक उद्दीपकों के प्रति एक समूह के सदस्यों की अन्तःक्रियाएँ अपेक्षाकृत सरल होती हैं, लेकिन सामाजिक उद्दीपकों के प्रति होने वाली अन्तःक्रियाएँ अपेक्षाकृत जटिल होती हैं। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के द्वारा इन सामाजिक उद्दीपकों का बोध होता है।

विशेषताएँ

टाऊट ने प्रत्यक्षीकरण की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है:

1. प्रत्यक्ष की एकता और अविच्छिन्नता
2. प्रत्यक्षीकरण द्वारा ध्यान केन्द्रित करना
3. दृढ़ता प्राप्त होना
4. प्रत्यक्षीकरण द्वारा अनुभव से सीखना
5. स्वतन्त्र समायोजन
6. प्रत्यक्ष में स्मरण

मानव की बाल्यावस्था में जैसे-जैसे वह समाज के सम्पर्क में आता है उसके अनुभवों और ज्ञान में वृद्धि होने के साथ-साथ उसके प्रत्यक्षीकरण में वृद्धि होती है, उसमें अर्थ लगाने तथा दूसरे के हाव-भाव तथा विचारों को समझने की शक्ति का विकास होता है। अनुभवों में वृद्धि के साथ ही बच्चा दो वस्तुओं में भेद को समझने लगता है। मानव में समस्त परिस्थिति को एक साथ देखने की शक्ति का विकास होने तथा सम्बन्ध पक्षों के विकास होने से प्रत्यक्षीकरण की समझ विकसित होती है।

प्रक्रियाएँ

प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया तथा वस्तु की परिस्थिति के प्रति एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इसके लिए उद्दीपक आवश्यक है। यह ग्राह्य केन्द्रियों (त्मबमचजवत छमतअमे) को प्रभावित करता है। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में निम्नलिखित प्रक्रियाएँ निहित होती हैं:

- (1) ग्राह्य प्रक्रियाएँ

प्रत्यक्षीकरण में ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाओं का समावेश होता है। इसी के द्वारा व्यक्ति में प्रत्यक्षीकरण का ज्ञान विकसित होता है। जैसे देखने, सुनने या सूँघने की क्षमता से सम्बन्धित प्रत्यक्षीकरण ज्ञानेन्द्रियों की उत्तेजना से मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति में प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।

(2) प्रतीकात्मक प्रक्रियाएँ

इसके अन्तर्गत व्यक्ति की विभिन्न वस्तुओं के प्रतीकों से अनुभव तथा भावनाएँ जुड़ी होती हैं। जैसे भोजन पकने की सुगंध से ही हमारे मस्तिष्क में भोजन का स्वाद तथा तस्वीर उभरने लगती है तथा हमारी भूख में वृद्धि होने लगती है।

(3) भावनात्मक प्रक्रियाएँ

प्रत्यक्षीकरण में भावनात्मक प्रक्रियाओं का भी समावेश होता है। सुख या दुःख की अनुभूति होने पर व्यक्ति का व्यवहार भी उसी के अनुरूप हो जाता है। प्रत्यक्षीकरण में तटस्थता का भाव विद्यमान रहता है।

(4) लालित्यात्मक प्रक्रियाएँ

प्रत्यक्षीकरण की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति में वस्तु के प्रति प्रिय या अप्रिय का भाव प्रदर्शित होता है। किसी वस्तु या परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण में सौन्दर्यानुभूति भी रहती है। यह व्यक्ति के पूर्व अनुभव तथा भावात्मक प्रक्रियाओं पर आधारित होता है। जो वस्तु हमें प्रिय लगती है, वही सुन्दर भी लगती है। जिस वस्तु के प्रति प्रियता या अप्रियता का भाव नहीं रहता, वह वस्तु हमें प्रिय या अप्रिय भी नहीं लगती है।

(5) एकीकरण की प्रक्रियाएँ

इसके अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण अनेक ग्राह्य केन्द्रियों से प्रभावित होता है लेकिन उसकी प्रक्रिया एक सी रहती है। जैसे किसी फूल का रंग तथा सुगन्ध अलग-अलग है लेकिन प्रत्यक्षीकरण में हमारे समक्ष केवल फूल की आकृति प्रकट होती है।

निर्धारक

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने वाले जितने भी महत्वपूर्ण कारक हैं, उन्हें मुख्यतः निम्न दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

संरचनात्मक निर्धारक

संरचनात्मक कारकों में भौतिक उद्दीपकों से सम्बन्धित कारक आते हैं। यह कारक व्यक्ति के सामाजिक प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं। संरचनात्मक कारकों में कुछ प्रमुख कारक हैं:

(1) उद्दीपक की आवृत्ति

व्यक्ति के संज्ञानात्मक संगठन को उद्दीपक की पुनरावृत्ति महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। एक उद्दीपक की जितनी अधिक बार पुनरावृत्ति होती है उस पर व्यक्ति के ध्यान आकर्षण की उतनी ही अधिक सम्भावना होती है जिससे वह उसके संज्ञानात्मक संगठन में सम्मिलित हो जाता है। इसके विपरीत उद्दीपक की जितनी कम पुनरावृत्ति होगी उसके व्यक्ति के संज्ञानात्मक संगठन में सम्मिलित होने की उतनी ही कम सम्भावना होगी।

(2) उद्दीपक की तीव्रता

व्यक्ति अपने संज्ञानात्मक संगठन में किसी उद्दीपक का चयन करेगा या नहीं यह उद्दीपक की तीव्रता से प्रभावित होता है। सामान्यतः जिन उद्दीपकों की तीव्रता जितनी अधिक होती है उन उद्दीपकों के संज्ञानात्मक संगठन में सम्मिलित होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है। जैसे मन्द गति के प्रकाश की अपेक्षा तीव्र गति का प्रकाश ध्यान को अधिक आकर्षित करता है फलस्वरूप व्यक्ति उसका ज्ञान उतना ही शीघ्र प्राप्त करता है।

(3) उद्दीपक की संख्या

उद्दीपकों की संख्या के आधार पर व्यक्ति अपने संज्ञानात्मक संगठन में उद्दीपक का चुनाव करता है। उद्दीपकों की संख्या जितनी अधिक होती है वे उद्दीपक व्यक्ति के संज्ञान को उतनी अधिक मात्रा में प्रभावित करते हैं।

(4) विरोधी उद्दीपक

विरोधी उद्दीपक भी संज्ञानात्मक संगठन को प्रभावित करने का प्रमुख कारक है। उदाहरण स्वरूप जब दो परस्पर विरोधी या असमान उद्दीपक होते हैं तो व्यक्ति का ध्यान उन पर शीघ्र जाता है; जैसे सफेद-काले या लाल-हरे रंग की उत्तेजना असमान या विरोधी होने के कारण व्यक्ति के ध्यान को अधिक आकर्षित करती है। इसी प्रकार श्वेत व्यक्तियों के समूह में एक नीग्रो व्यक्ति हो तो वह सभी का ध्यान आकर्षित करता है।

(5) उद्दीपक का प्रदर्शन काल

व्यक्ति का संज्ञान उद्दीपक की प्रदर्शन काल अवधि से भी प्रभावित होता है। एक उद्दीपक एक व्यक्ति के सामने जितने अधिक समय तक रहता है उस व्यक्ति के संज्ञान को प्रभावित करने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है। जब उद्दीपक व्यक्ति के सामने बहुत कम अवधि के लिए उपस्थित होते हैं तो उनसे संज्ञान के प्रभावित होने की सम्भावना उतनी ही कम होती है।

(6) उद्दीपक के प्रति अभिवृत्ति

सामाजिक उद्दीपकों के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति भी उसके संज्ञान और प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है। जैसे एक धर्म-सम्प्रदाय के व्यक्तियों का अपने धर्म सम्प्रदायों के व्यक्तियों के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति के कारण अच्छा व्यवहार होता है जबकि दूसरे धर्म सम्प्रदायों के प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति के कारण बुरा व्यवहार होता है।

(7) मानसिक तत्परता

व्यक्ति की मानसिक तत्परता भी उसके प्रात्यक्षिक संगठन को प्रभावित करती है। जैसे किसी व्यक्ति के आने का इन्तजार करने पर प्रवेश द्वार पर किसी भी प्रकार की आहट उस व्यक्ति के आने की सूचना देती है। जिसका कारण मानसिक तत्परता होता है।

प्रकार्यात्मक निर्धारक

क्रच और क्रचफील्ड के अनुसार, प्रकार्यात्मक निर्धारकों के अन्तर्गत ऐसे कारक आते हैं जैसे व्यक्ति की आवश्यकताएँ, पूर्वानुभव, व्यक्ति की भाव-दशा, व्यक्ति की स्मृति सामाजिक प्रत्यक्षीकरण को इन कारकों के अतिरिक्त अनेक कारक महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। कुछ महत्वपूर्ण प्रकार्यात्मक निर्धारकों का वर्णन निम्नलिखित है:

1. सामाजिक अन्तःक्रियाओं की प्रकृति

सामाजिक अन्तःक्रियाओं के अन्तर्गत एक समूह या समाज के व्यक्तियों की पारस्परिक प्रक्रियाओं का विवरण होता है। एक समूह के सदस्यों की पारस्परिक प्रक्रियाएं उस समूह के सामाजिक प्रत्यक्षीकरण को महत्वपूर्ण ढंग से

प्रभावित करती है। समूह के व्यक्तियों के अच्छे या बुरे पारस्परिक सम्बन्धों पर भी प्रत्यक्षीकरण प्रभावित होता है। समूह के सदस्यों में अच्छे पारस्परिक सम्बन्धों से वह एक दूसरे के गुणों का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। परन्तु इनके मध्य पारस्परिक सम्बन्ध मधुर न होने पर वह एक दूसरे के गुणों की अपेक्षा अवगुणों का प्रत्यक्षीकरण अधिक करते हैं।

2. प्रत्यक्षीकरणकर्ता की क्षमता

विभिन्न प्रत्यक्षीकरणकर्ता की निर्णय क्षमता में वैयक्तिक विभिन्नताएँ होती हैं। एक व्यक्ति की प्रत्यक्षीकरण की क्षमता कैसी और कितनी होगी- यह मुख्यतः व्यक्ति की व्यक्तित्व विशेषताओं पर निर्भर करता है। कुछ व्यक्ति सामाजिक प्रत्यक्षीकरण उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण अधिक सही अथवा शुद्ध ढंग से करते हैं वहीं कुछ अन्य व्यक्ति इन्हीं उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण उतने शुद्ध ढंग से नहीं कर पाते हैं, क्योंकि उनके प्रत्यक्षीकरण की क्षमता निम्न अथवा कमजोर होती है।

3. अन्य व्यक्तियों की विशेषताएँ

प्रत्यक्षीकरण में व्यक्तियों को कुछ व्यक्तियों के व्यक्तिगत विशेषताओं के प्रत्यक्षीकरण में कठिनाई का अनुभव होता है। दैनिक जीवन के अनुभव में प्रतीत होता है कि जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओं का प्रत्यक्षीकरण सरलता से करता है तो उसका प्रत्यक्षीकरण का निर्णय अपेक्षाकृत शुद्ध प्रकार का होता है परन्तु जब वह दूसरे व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओं का प्रत्यक्षीकरण करने में कठिनाई का अनुभव करता है तो उसका उस व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रत्यक्षीकरण और निर्णय कुछ अशुद्ध रह जाता है।

4. आवश्यकताएँ और अनुक्रिया प्रबलता

व्यक्ति में जिस प्रकार की आवश्यकताएँ या अन्तर्नोद होते हैं वह व्यक्ति वैसी ही अनुक्रियाएँ करता है। व्यक्ति की अनुक्रियाओं की प्रबलता उसकी आवश्यकताओं और अन्तर्नोदों से प्रभावित होती है। किसी आवश्यकता के उद्दोलित होने पर व्यक्ति में कुछ सम्बन्धित अनुक्रियाएँ उत्पन्न होती है। आवश्यकता का उद्दोलन जितना ही अधिक होता है सम्बन्धित अनुक्रियाओं की प्रबलता उसी रूप में उतनी ही अधिक होती है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति में जितनी भूख होती है उसमें भोजन प्राप्त करने की अनुक्रिया उतनी ही प्रबल होती है।

5. मूल्य प्रणाली

सामान्यतः व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण उन मूल्यों से अधिक प्रभावित होता है जो व्यक्ति के लिए अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। ये मूल्य सामाजिक और व्यक्तिगत स्तर पर जितने ही अधिक महत्वपूर्ण होते हैं व्यक्ति का सामाजिक प्रत्यक्षीकरण उतना ही अधिक प्रभावित होता है। सामान्यतः दैनिक जीवन के अनुभवों में देखा गया है कि व्यक्ति उन व्यक्तियों का और उन सामाजिक उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण उतना ही अधिक और शीघ्र करता है जितने अधिक ये व्यक्तियों के लिए मूल्यवान होते हैं। जो सामाजिक उद्दीपक मूल्यवान नहीं होते हैं उनके प्रत्यक्षीकरण किये जाने की सम्भावना कम होती है तथा वे संयोग पर निर्भर करते हैं।

6. प्रात्यक्षिक बल

ब्रूनर और गुडमैन ने सर्वप्रथम 1947 में Perceptual Accentuation शब्द का प्रयोग किया। प्रात्यक्षिक बल का अर्थ है कि जो उद्दीपक व्यक्ति की आवश्यकताओं से सम्बन्धित और सामाजिक दृष्टि से मूल्यवान होते हैं ऐसे उद्दीपकों के आकार के प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति आकार को अत्यांकन करता है। ब्रूनर और गुडमैन ने अपने एक प्रयोगात्मक अध्ययन में प्रात्यक्षिक बल को सिद्ध किया है। यह प्रयोग दस वर्ष के बालकों पर किया गया। प्रयोग में विभिन्न

आर्थिक स्तर के बच्चे थे। प्रयोग में प्रयोज्यों को पर्दे पर पड़ रही प्रकाश की गोल आकृति को यन्त्रों द्वारा इस प्रकार समायोजित करना था कि विभिन्न सिक्कों के आधार की वह आकृति बन जाए। इस प्रयोग में देखा गया कि इस प्रकार के बच्चों ने विभिन्न सिक्कों की जो आकृतियाँ बनायीं वे सभी आकृतियाँ सिक्कों के वास्तविक आकार से बड़ी थीं। इस प्रयोग में यह देखा गया कि सिक्कों का जैसे-जैसे मूल्य बढ़ता गया मूल्य के बढ़ने के साथ-साथ बच्चों द्वारा बना ली गयी आकृतियों का आकार भी बढ़ता गया। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि गरीब घर के बच्चों ने सिक्कों के आकार के मूल्यांकन में अत्यांकन किया अर्थात् अमीर घर के बच्चों की अपेक्षा गरीब घर के बच्चों ने सिक्कों का आकार बड़ा बनाया।

7. सूचनाओं की मात्रा एवं क्रम

एक सामाजिक प्रत्यक्षीकरण करने वाले व्यक्ति को कितनी सूचनाएँ और किस क्रम में सूचनाएँ मिलती हैं- इससे भी व्यक्ति का सामाजिक प्रत्यक्षीकरण प्रभावित होता है। किसी सामाजिक उद्दीपक के सम्बन्ध में व्यक्ति को जितनी ही अधिक पर्याप्त मात्रा में सूचना उपलब्ध होती है वह सामाजिक उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण उतने ही अधिक अच्छे ढंग से करता है। होलेण्डर के अनुसार किसी उद्दीपक का प्रारम्भिक परिचय और पहचान उस उद्दीपक के प्रत्यक्षीकरण और निर्णय में सहायक होते हैं। उद्दीपकों के दीर्घकालीन परिचय के कारण प्रत्यक्षीकरण में अनेक त्रुटियाँ आ जाती हैं। कई बार दीर्घकालीन परिचय उद्दीपक को अनेकार्थक बना देता है जिससे प्रत्यक्षीकरण त्रुटिपूर्ण हो जाता है।

8. अभ्यन्तर क्रमिक एवं अन्तर क्रमिक प्रभाव

ताजफेल ने अभ्यन्तरक्रमिक प्रभाव के सम्बन्ध में कहा है कि यह वह प्रभाव है जो एक श्रेणी में दिये गये उद्दीपकों के मूल्य और आकार पर निर्भर करते हैं। यदि किसी श्रेणी में बड़े और छोटे दो प्रकार के उद्दीपक हैं तो प्रयोज्य बड़े उद्दीपक का मूल्यांकन करेगा और छोटे उद्दीपकों का अल्पांकन करेगा। अन्तरक्रमिक प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में ताजफेल ने कहा है कि यह वह प्रभाव है जो दो उद्दीपक श्रेणियों से सम्बन्धित होता है। इन दो श्रेणी के उद्दीपकों में एक श्रेणी के उद्दीपक मूल्यांकन उद्दीपक होते हैं और दूसरी श्रेणी के उद्दीपक तटस्थ प्रकार के होते हैं। ताजफेल ने अपने अध्ययन में देखा कि प्रयोज्यों ने तटस्थ उद्दीपकों की अपेक्षा मूल्यवान उद्दीपकों के निर्णय में अत्यांकन किया। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि जब उद्दीपक के आकार का सम्बन्ध धनात्मक मूल्यों से जुड़ा हुआ होता है तब प्रात्यक्षिक बल अधिक होता है तथा जब उद्दीपक का सम्बन्ध ऋणात्मक मूल्यों से होता है तो उस दशा में प्रात्यक्षिक बल कम होता है।

9. सामाजिक सहमति

ऐश ने सामाजिक सहमति का सामाजिक प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए एक प्रयोग में समूह दबाव के प्रभाव का अध्ययन किया। ऐश के प्रयोग की समस्या थी कि समूह दबाव का व्यक्तिगत निर्णय पर क्या प्रभाव पड़ता है। प्रयोग में 87 प्रयोज्य थे। प्रयोग में दो समूह थे एक प्रयोगात्मक समूह तथा दूसरा नियन्त्रित समूह। प्रयोगात्मक समूह में प्रयोज्यों की संख्या 50 थी। प्रयोग में स्वतन्त्र चर समूह दबाव था। ऐश ने इस स्वतन्त्र चर का प्रयोग अथवा स्वतन्त्र चर के प्रभाव का अध्ययन प्रयोगात्मक समूह पर किया। नियन्त्रित समूह में इस स्वतन्त्र चर को प्रस्तुत नहीं किया।

प्रयोगात्मक समूह के सदस्यों को ऐश ने एक स्क्रीन के सामने अर्द्धवृत्ताकार स्थिति में बैठाया। स्क्रीन पर दो बोर्ड लगे थे। बायीं ओर के बोर्ड पर एक दस इंच ऊँची लम्बवत् रेखा खिंची हुई थी। दायीं ओर बोर्ड पर तीन लम्बवत् रेखा क्रमशः , , इंच थी। प्रत्येक प्रयोज्य से बारी-बारी से पूछा गया कि दायीं बोर्ड पर बनी तीन रेखाओं में किस

नम्बर की रेखा बाँयी ओर बने बोर्ड की रेखा के बराबर है। इस प्रकार के दो प्रयास किये गये। ऐश ने दोनों प्रयासों में देखा कि प्रयोज्य यह कहते हैं कि दाँयी तरफ बोर्ड पर बनी दूसरे नम्बर की रेखा बाँयी बोर्ड पर बनी रेखा के समान है। तीसरे प्रयास में दोनों बोर्ड की रेखाओं की लम्बाई बदल दी गई। इस बार बायी बोर्ड पर रेखा की लम्बाई कर दी गई और दायी बोर्ड पर रेखाओं की लम्बाई क्रमशः और कर दी गई। इस बार प्रयोगात्मक समूह में एक नये प्रयोज्य को सम्मिलित किया गया। पहले की भाँति ही दो प्रयास किये गये। इन दोनों प्रयासों में सभी प्रयोज्यों ने एक-सा ही उत्तर दिया। सभी प्रयोज्यों ने दूसरे नम्बर की रेखा को बायीं ओर बनी रेखा के समान कहा। नये सम्मिलित प्रयोज्य के सामने उत्तर देने में यह कठिनाई उत्पन्न हो रही थी कि वह सभी प्रयोज्यों के समान उत्तर दे या अपने अनुसार सही उत्तर दे।

अतः इस आधार पर ऐश ने अपने प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला कि समूह दबाव या समूह निर्णय से व्यक्तिगत निर्णय प्रभावित होते हैं। ऐश ने अपने प्रयोग में देखा कि 74 प्रतिशत प्रयोज्यों ने अन्य सदस्यों के निर्णय से प्रभावित होकर त्रुटिपूर्ण निर्णय लिए। इससे स्पष्ट होता है कि जब समूह के सभी सदस्य एक विशेष निर्णय देते हैं तो समूह का नया सदस्य भी अन्य सदस्यों के निर्णय का अनुकरण करता है।

10. पुरस्कार एवं दण्ड

पुरस्कार एवं दण्ड के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने प्रयोग किये। जिनके आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि व्यक्ति पुरस्कृत चित्रों या पुरस्कृत चित्रों के अंशों का प्रत्यक्षीकरण दण्डित चित्रों की अपेक्षा अधिक करते हैं। शेफर और मर्फी द्वारा इस दिशा में किया गया प्रयोग उल्लेखनीय है। इनके अनुसार परिवर्तनशील आकृति पृष्ठभूमि से सम्बन्धित चित्र प्रयोज्यों को दिखाकर उनके प्रत्यक्षीकरण पर पुरस्कार और दण्ड के प्रभाव का अध्ययन किया। प्रयोग के प्रथम भाग में प्रयोज्यों को दो मुखाकृतियाँ अलग-अलग दिखाई गईं। एक मुखाकृति के प्रत्यक्षीकरण पर प्रयोज्यों को पुरस्कार स्वरूप कुछ मुद्राएँ दी जाती थीं। दूसरी मुखाकृति के प्रत्यक्षीकरण पर प्रयोज्यों से कुछ मुद्राएँ ले ली जाती थीं। इस प्रकार प्रशिक्षित करने के बाद दोनों मुखाकृतियों को एक पूर्ण चित्र के रूप में प्रयोज्यों के सामने प्रस्तुत किया गया। यह प्रस्तुतीकरण टैचिस्टोस्कोप की सहायता से किया गया जिसका प्रदर्शन काल बहुत कम था। इस अध्ययन में अध्ययनकर्ताओं को परिणाम प्राप्त हुए उनसे यह सिद्ध हुआ कि व्यक्ति पुरस्कृत चित्रों का अथवा पुरस्कृत चित्रों के अंशों का प्रत्यक्षीकरण दण्डित चित्र की अपेक्षा अधिक करते हैं।

8.3 सारांश

इस इकाई में सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की विशेषता एवं निर्धारक तत्वों को बताया गया है। इस इकाई में सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रियाओं को भी सरल, एवं सहज ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

8.4 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की विशेषताएं बताइये।
2. सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की कितनी प्रक्रियाएं हैं।
3. सामाजिक प्रत्यक्षीकरण को परिभाषित कीजिए तथा इसके निर्धारक बताइये।

8.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. William Mc Dougall, An Introduction to Social Psychology.

2. "This means experiencing any emotion which is experienced by a fellow being."- V.V. Akolkar : Social Psychology.
3. "Social perception is frequently taken to devote the whole range of the individual's understanding of his social situation-"F.H. Allport, Theory of Perception to the concept of structure.
4. "Certain psychological states such as food deprivation, tend to increase animals behavioural output"- H.J. Eysenek, Encyclopedia of Psychology.

सामाजिक मानदण्ड व मूल्य

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 सामाजिक मानदण्ड : अर्थ एवं परिभाषा
- 9.3 सामाजिक मानदण्डों की विशेषताएँ
- 9.4 सामाजिक मानदण्डों का वर्गीकरण
- 9.5 सामाजिक मूल्य : अर्थ एवं परिभाषा
- 9.6 सामाजिक मूल्यों की विशेषताएँ
- 9.7 सामाजिक मूल्यों का महत्व
- 9.8 सारांश
- 9.9 बोध प्रश्न
- 9.10 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप—

- सामाजिक मानदण्ड एवं मूल्य किस प्रकार से समाज में एकरूपता स्थापित करते हैं यह समझ पायेंगे।
- सामाजिक मानदण्ड क्या हैं यह जान सकेंगे।
- सामाजिक मानदण्ड के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।
- सामाजिक मूल्य की पारिभाषिक व्याख्या को प्रस्तुत करना।

9.1 प्रस्तावना

सामाजिक मानदण्ड और मूल्य समाज के सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता लाते हैं। जब हम समाज के सदस्यों के व्यवहार को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि एक समाज के लोग एक जैसी पोशाक पहनते हैं? इसका क्या कारण है कि एक समाज के लोग हाथों से भोजन खाते हैं तो दूसरे समाज के लोग चम्मच, काँटा या छुरी से भोजन करते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर को खोजा जाए तो कह सकते हैं कि हर समाज में कुछ रीति-रिवाज, परम्पराएँ, लोकरीतियाँ, शिष्टाचार आदि मानदण्ड हैं, जिनका पालन समाज के सभी सदस्य करते हैं। मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में सिर्फ अपनी इच्छानुसार व्यवहार नहीं करता है दे समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार के नियम, रीति-रिवाज, परम्परा, लोकरीति व रूढ़ियों आदि का पालन करते हैं। इन्हीं नियमों के कारण समाज के लोगों का परस्पर व्यवहार और आपसी सम्बन्ध व्यवस्थित रूप में होता है। समाजशास्त्र में हम इन नियमों को मानदण्ड, प्रतिमान या आदर्श नियम कहते हैं मानदण्ड समाज के मार्गदर्शक सिद्धान्त हैं जो उसके सदस्यों के परस्पर व्यवहार को दिशा देते हैं।

हम इस इकाई में सामाजिक मूल्यों की भी व्याख्या करेंगे। सामाजिक मानदण्ड और मूल्यों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमेशा सामाजिक मानदण्ड मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मानदण्डों के विपरीत मूल्य सामान्य मार्गदर्शक सिद्धान्त हैं। दूसरी तरफ मानदण्ड व्यक्ति के अहार की छोटी-छोटी बातों को भी नियंत्रित और निर्देशित करते हैं। मूल्य का उपयोग कई स्थितियों में होता है।

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक मानदण्डों व मूल्यों का विस्तार से अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

9.2 सामाजिक मानदण्ड : अर्थ एवं परिभाषा

मानदण्ड की धारणा आधुनिक समाजशास्त्र में संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विचारधारा है। जब हम इस धारणा को प्रयोग में लाते हैं तो हमारा तात्पर्य अपने सोचने के का से न होकर व्यवहार के का से होता है। समाज का सदस्य होने के नाते बहुत से काम हमें इस समाज में करने पड़ते हैं और बहुत से कामों को करने के लिए हम पर प्रतिबन्ध है। यह सब संस्तुति है। अतः किसी भी समाज के मानदण्ड उस समाज की आधारशिला है। हमारे बातचीत, खान-पान आदि के व्यवहार एक निश्चित स्तर पर होते हैं। हमारा यह स्तर हमारे मानदण्डों द्वारा निश्चित होता है। हमारा व्यवहार एक निश्चित दिशा की ओर प्रगति करता है और इसे मार्गदर्शन देने का काम मानदण्ड का है। बिना मानदण्डों के सामाजिक जीवन असंभव हो जाएगा और समाज की व्यवस्था ही समाप्त हो जाएगी। मानदण्ड के अभाव में हमें यह नहीं मालूम होगा कि किन लोगों को हमें प्रणाम करना है, किनके मस्तिष्क पर आशीर्वाद का हाथ रखना है और किन्हें उपेक्षा और तिरस्कार की आँखों से देखना है। बीयरस्टीड ने कहा है कि स्वयं समाज भी एक प्रकार की व्यवस्था है जिसका जीवन मानदण्डों के अस्तित्व से ही संभव है और मानदण्ड ही सामाजिक संगठन के तत्व को बनाने वाले हैं।

मानदण्ड की परिभाषा देने से पहले हम एक सामान्य उदाहरण द्वारा इसके अर्थ को स्पष्ट करेंगे।

एक क्षण के लिए हम समाजशास्त्र को मूल जायें और फुटबाल के खेल के मैदान की कल्पना करें। हम बैठे हैं और अन्य लोग भी हमारी तरह खेल देखने के लिए बैठे हैं। यह एक मैच है। शहर के दो कॉलेजों की टीमों मैदान में खड़ी है। अभी खेल आरंभ नहीं हुआ है। कप्तान अपने-अपने खिलाड़ियों को यथास्थान खड़ा कर रहे हैं। कोई भी व्यक्ति अपने निर्धारित स्थान को छोड़ नहीं सकता। सब तैयार हैं, पर खेल तब तक आरंभ नहीं होगा, जब तक रेफरी सीटी नहीं बजाता। लो, अब सीटी बजी और खेल प्रारंभ हो गया। खिलाड़ियों की जरा सी मूल होने पर रेफरी सीटी बजाकर सजा देता है। वह किसी का पक्ष नहीं लेता। देखिये, यह जोशीला खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी से धक्का-मुक्की कर रहा है। अगर खेल में यों ही मारा-मारी चलती रही तो सब चौपट हो जाएगा पर रेफरी ऐसा नहीं होने देता। वह इस खिलाड़ी को एक-दो बार तो सावधान कर देता है और अन्त में उसे खेल के मैदान से बाहर निकाल देता है। खेल का यह सबसे कठोर दण्ड है। खिलाड़ी का यह बहुत बड़ा अपमान है। उसकी गलती यह है कि उसने खेल के मानदण्डों को तोड़ा है। हर खेल के कुछ निश्चित मानदण्ड होते हैं और उनका समान करना हर खिलाड़ी का कर्तव्य होता है।

हमने इस दृष्टान्त को अनावश्यक रूप से बड़ा और विस्तृत नहीं किया है, पर इससे यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि नियमों-उपनियमों के बिना फुटबाल का खेल नहीं खेला जा सकता और इस अर्थ में कोई भी खेल नहीं खेला जा सकता। उधर दर्शकों पर भी कुछ मानदण्ड लागू होते हैं। उन्हें खेल देखने के लिए एक निश्चित टिकट खरीदना पड़ता है, केवल प्रवेश द्वार से ही स्टेडियम में जाना पड़ता है, एक निश्चित स्थान पर बैठना होता है। इस भीड़-भाड़ में स्त्रियों को प्रवेश का अवसर पहले दिया जाता है और पुरुष बाद में जाते हैं। दर्शक अपनी-अपनी श्रेणी में बैठ जाते हैं। बीच-बीच में चाय, कचौड़ी वाले आते जाते हैं। वे भी एक भाव से खाद्य वस्तुएँ बेचते हैं। यह नहीं

कि गरीब को एक भाव से और अमीर को दूसरे भाव से। जोश में आकर यह भी नहीं होता कि दर्शक झपटकर मैदान में खेलने चले जायें। वह केबल खिलाड़ियों को जोश दिला सकते हैं। खेल के ये कुछ मानदण्ड हैं। इनका परिपालन खिलाड़ी, रेफरी और दर्शकों को करना पड़ता है। परिपालन नहीं करने पर दण्ड भी भोगना पड़ता है।

जैसे मानदण्ड खेल में हैं, वैसे ही समाज में भी। समाज खेल नहीं है। पर इसके नियम-उपनियम होते हैं। समाज के सभी नियम किसी रेफरी द्वारा क्रियान्वित नहीं किये जाते बरन् समाज के सदस्य अपने आप उनका पालन करते हैं। समाज के ये नियम ही समाज के मानदण्ड हैं। बीयरस्टीड मानदण्डों की व्याख्या करते हुए एक स्थान पर लिखते हैं :

संस्कृति के द्वितीय वृहत् तत्व के रूप में, मानदण्डों का वर्ग नियमों, संभावनाओं और प्रतिमिति (स्तर युक्त) प्रक्रियाओं को सम्मिलित करता है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि उसमें वे सब परिस्थितियाँ और व्यवहार के तौर तरीके सम्मिलित हैं जिनका हम सामना करते हैं और जिनमें हम सक्रिय भाग लेते हैं।

सामाजिक व्यवहार में औपचारिक या अनौपचारिक तरीके से हम मानदण्ड का पूरा ध्यान रखते हैं उदाहरण के लिए, हम अपने मित्र को एक पत्र लिखते हैं। इसमें भी मानदण्ड होता है, जिसका हम पालन करते हैं। साधारणतया हम पत्र के ऊपर दाहिने सिरे पर लिखने का स्थान, दिनांक आदि अंकित करते हैं। पत्र का प्रारंभ एक निश्चित अभिवादन के साथ किया जाता है। पत्र लिखने की यह विधि समाज द्वारा निर्धारित एक निश्चित मानदण्ड है। पत्र लिखने का यह प्रतिमान व्यापारी पत्र लेखन से पृथक है। हम समाज की किसी भी व्यवस्था को लें, प्रत्येक में मानदण्ड होते हैं। कुछ मानदण्ड परम्परागत होते हैं और कुछ लिखित। सच्चाई यह है कि हम सामाजिक व्यवस्थाओं को कहीं भी देखें, उनमें हमें मानदण्ड अवश्य मिलते हैं।

किसी एक समाज के मानदण्ड दूसरे समाज के मानदण्ड से भिन्न होते हैं। पाकिस्तान में यह एक मानदण्ड है कि स्त्रियाँ अपने सिर को दुपट्टे से ढक कर रखती हैं। यूरोप के देशों में ऐसा कोई मानदण्ड स्त्रियों के लिए नहीं है। हमारे यहाँ विद्यार्थी अपने अध्यापक का अभिवादन हाथ मिलाकर नहीं करते हैं। यह हमारे देश का मानदण्ड है। विदेशों में ऐसा कोई मानदण्ड नहीं है। मानदण्ड उम्र के साथ भी बदल जाता है। वृद्ध व्यक्ति अपने अनुज को आशीर्वाद देते हैं। जहाँ मानदण्ड एक समाज से दूसरे समाज में बदल जाते हैं, उम्र के साथ उनमें परिवर्तन आ जाता है। वही मानदण्ड परिवर्तित भी होते हैं।

किंगस्ले डेविस ने आग्रहपूर्वक कहा है कि मानदण्ड व्यक्ति के व्यवहार पर निरन्तर अंकुश रखते हैं। इसकी परिभाषा में वे लिखते हैं:

मानदण्ड नियंत्रक है। ये वे तब हैं, जिनके द्वारा मानव समाज सदस्यों के व्यवहारों का नियमन इस प्रकार करता है कि वे सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपनी क्रियाओं को सम्पादित करते रहें और कई बार तो जैविकीय आवश्यकताओं के मूल पर भी।

हेरालाम्बोस ने मानदण्डों की व्याख्या अधिक विस्तृत रूप में की है। वे कहते हैं :

मानदण्ड किसी निश्चित स्थिति में कौनसा व्यवहार उपयुक्त और स्वीकार्य होता है, उसे परिभाषित करता है। मानदण्डों का अमल सकारात्मक और नकारात्मक दण्ड द्वारा किया जाता है। यह दण्ड औपचारिक या अनौपचारिक हो सकता है। वे दण्ड जो मानदण्डों को क्रियान्वित करने के लिए काम में लिए जाते हैं, सामाजिक नियंत्रण को स्थापित करते हैं। इन्हीं के द्वारा सामाजिक व्यवस्था बनी रहती है और इनकी निरन्तरता भी।

9.3 सामाजिक मानदण्ड : अर्थ एवं परिभाषा

ऊपर हमने सामाजिक मानदण्डों की कुछ परिभाषाएँ दी हैं। इन परिभाषाओं में मानदण्डों की विशेषताएँ निहित हैं। कुछ विशेषताएँ इस तरह हैं :

मानदण्ड संस्कृति के अंग

प्रत्येक समूह की और इसी तरह प्रत्येक समाज की अपनी एक संस्कृति होती है। अमेरिकी, यूरोपीय और इसी तरह एशिया के समाजों की अपनी एक निश्चित पहचान है। यह पहचान इन समाजों की संस्कृति को बताती है। अमेरिका में एक राष्ट्रीय मुहावरा है: अपना बारूद सूखा रखो। इसका मतलब है बारूद से भरी बन्दूक कभी भी चलानी पड़ सकती है और इसके लिए बारूद सूखा रहना आवश्यक है। मतलब हुआ, अक्सर किसी को कहकर नहीं आता, इसका लाभ उठाने के लिए आदमी को हमेशा तैयार रहना चाहिए। भारतीय संस्कृति की भी अपनी एक पहचान है। सभी संस्कृतियों के अपने निजी मानदण्ड होते हैं। ऐसे मानदण्ड कभी नहीं होते जो समूह या समाज की संस्कृति से मेल न खाते हों।

मानदण्डों की क्रियान्विति, सकारात्मक या नकारात्मक होती है

जहाँ कहीं मानदण्ड होते हैं, उनसे जुड़ा हुआ कोई न कोई दण्ड विधान या प्रतिफल अवश्य होता है। जब मानदण्ड की क्रियान्विति होती है तो उसके लिए कोई न कोई पुरस्कार व्यवस्था अवश्य होती है। यह पुरस्कार प्रशंसा में व्यक्त किया जा सकता है, लेकिन यदि मानदण्ड की अवहेलना की जाती है, उसकी उपेक्षा होती है तो इसके लिए संबंधित समाज में दण्ड विधान भी होता है। यह दण्ड आलोचना, तिरस्कार या अवहेलना के रूप में अभिव्यक्ति पाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा सुश्रूषा नहीं करता है तो उसके इर्द-गिर्द के लोग उसकी आलोचना करते हैं, तिरस्कार करते हैं।

मानदण्ड औपचारिक और अनौपचारिक होते हैं

परम्परागत और रूढ़िगत समाजों में मानदण्ड प्रायः अनौपचारिक होते हैं। ये मानदण्ड पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते हैं, समाज को विरासत में मिलते हैं। जब हम किसी के यहाँ शोक या मातम की स्थिति में हमदर्दी की अभिव्यक्ति करने जाते हैं तो अनौपचारिक रूप से हम खिन्न चेहरे के साथ बैठते हैं और लोक-परलोक और जीवन की क्षणभंगुरता पर चर्चा करते हैं। इस तरह के मानदण्ड अनौपचारिक हैं। ऐसा करने का कोई लिखित मानदण्ड नहीं है और न ही ऐसा कोई नियम है। वास्तविकता यह है कि मातमी अवसरों पर ऐसा ही वैराग्यपूर्ण रूप प्रस्तुत करना होता है।

औपचारिक मानदण्ड सामान्यतया लिखित होता है, कानूनी जामें में प्रस्तुत होते हैं। सड़क के बायीं ओर चलना किसी भी देश का कानूनी मानदण्ड है। इसका पालन नहीं करने पर एक निश्चित दण्ड विधान है। इसी भाँति किसी भी रोजगार के लिए प्रार्थना-पत्र देना या निविदा प्रस्तुत करना औपचारिक मानदण्ड का दृष्टान्त है। समाज जितना अधिक औद्योगिक और विकसित होगा, उसमें उतनी ही अधिक औपचारिक मानदण्ड की भूमिका होगी।

मानदण्ड के लिए कोई न कोई स्थिति अदृश्य होती है

मनुष्य जो भी व्यवहार करता है वह शून्य में नहीं करता। व्यवहार किसी न किसी स्थिति में किया जाता है। खान-पान, पोशाक, जन्म, मृत्यु परीक्षा, व्यापार, बाजार आदि विभिन्न स्थितियाँ हैं। इन स्थितियों में व्यक्ति व्यवहार करता है। किसी एक निश्चित स्थिति में कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका मार्गदर्शन मानदण्ड करते हैं। समाजशास्त्र में पारसन्स द्वारा दिया गया क्रिया सिद्धान्त लोकप्रिय रहा है। वे कहते हैं कि व्यक्ति अपने उद्देश्य की

प्राप्ति के लिए क्रिया करता है। कर्ता की क्रिया किसी न किसी स्थिति में होती है, यह स्थिति भौतिक और सांस्कृतिक होती है। पारसन्स कहते हैं कि भौतिक और सांस्कृतिक स्थिति में किया करने के लिए मानदण्ड ही महत्वपूर्ण हैं। हमारे देश में गाँधीजी ने बराबर साधन और साध्य की चर्चा की है। इसमें उनका कहना है कि उद्देश्य प्राप्ति के लिए जो साधन यानी मानदण्ड काम में लिए जायें वे विशुद्ध होने चाहिए। इसलिए उनके अनुसार मानदण्ड मनमाने नहीं होने चाहिए। इनके पीछे समाज की वैधता का होना आवश्यक है। कुछ इसी तरह मर्टन ने भी मानदण्डहीन व्यवहार को एनोमी यानी समाज द्वारा अस्वीकृत कहा है। मानदण्ड कैसे होने चाहिए, इसका निर्णय स्थिति करती है।

मानदण्ड के साथ दण्ड विधान और पारितोषिक व्यवस्था जुड़ी होती है

यदि समाज में किसी व्यवहार के लिए मानदण्ड हैं तो अनिवार्य रूप से उनके साथ कोई न कोई सकारात्मक या नकारात्मक दण्ड विधान या पारितोषिक व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। यदि मानदण्ड के साथ ऐसी कोई व्यवस्था नहीं होती तो लोग ऐसे मानदण्ड को स्वीकार नहीं करेंगे। वह कानून कैसा जिसके उल्लंघन में कोई दण्ड नहीं। कानून है तो दण्ड अवश्य होना चाहिए। यह दण्ड औपचारिक भी हो सकता है और अनौपचारिक भी।

9.4 सामाजिक मानदण्डों का वर्गीकरण

मानदण्डों को साधारण विषय सामग्री पर तब तक अधिक नहीं लिखा जा सकता, जड़ तक हम उसके विभिन्न प्रकारों की वर्गीकरण न करें। मानदण्डों की संख्या इतनी अधिक है कि उन्हें व्यवस्थित रूप से किसी वर्गीकरण में रखना कठिन है। फिर भी विद्वानों ने मानदण्डों का वर्गीकरण किया है। ऐसा कोई विधिवत वर्गीकरण ' करने से पहले हम कुछ प्रचलित मानदण्डों को निम्न तालिका में रख सकते हैं:

- | | | |
|-------------|--------------------|----------------|
| 1. अधिनियम, | 2. सामाजिक स्थिति, | 3. नियम, |
| 4. रिवाज, | 5. जनरीतियाँ, | 6. रूढ़ियाँ |
| 7. निषेध, | 8. फैशन, | 9. संस्कार. |
| 10. रस्म, | 11. प्रथा और | 12. शिष्टाचार। |

मानदण्डों के वर्गीकरण के लिए उपरोक्त तालिका अधिक उपयोगी नहीं है। इसमें बहुत से पद पर्यायवाची जैसे हैं। एक पद का जो अर्थ निकलता है, उसी से मिलता— जुलता दूसरे शब्द का अर्थ भी निकलता है। दुर्भाग्य से समाजशास्त्र की पुस्तकों में मानदण्ड का कोई एक सामान्य वर्गीकरण नहीं मिलता है। इस अभाव में हम उपरोक्त तालिका की विषमता को एक सीमा तक कम कर सकते हैं। ऐसा करने में हम बीयरस्टीड का सहारा लेकर इन पदों को तिहरे वर्गीकरण में रख सकते हैं :

जनरीतियाँ

रूढ़ियाँ

कानून

इस वर्गीकरण पर विस्तृत रूप से लिखने से पहले यह स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि मानदण्डों का कोई भी प्रकार हो, सम्पूर्ण समूहों को यानी समूह के सदस्यों को प्रभावित करता है। मोटे रूप से, यह भी कहा जाना चाहिए कि वे मानदण्ड जो सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं, सामुदायिक मानदण्ड कहे जाते हैं। पाकिस्तान में ईद का त्यौहार सामुदायिक मानदण्ड है। यह इसलिए कि इस देश में ईस्लाम धर्म के अनुयायी बहुसंख्यक हैं। यूरोप में बड़ा दिन

सामुदायिक मानदण्ड है। इसी भाँति हमारे यहीं दीपावली एवं राखी सामुदायिक मानदण्ड है। दूसरी ओर हमारे यहाँ बड़ा दिन या ईद समिति के मानदण्ड हैं। मानदण्डों को इस भाँति देखना केवल उन्हें वर्गीकृत करने का लघु प्रयास है। बीयरस्टीड ने मानदण्डों का जो वर्गीकरण किया है, उसका विवरण निम्नानुसार है

जनरीतियाँ

अंग्रेजी शब्द फोकवेज का सबसे पहली बार प्रयोग अमेरिका के समाजशास्त्री समनर ने ई. 1906 में अपनी प्रकाशित पुस्तक में किया था। इसका शाब्दिक अर्थ है 'जनता की रीतियाँ'। लोगों ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित करने के लिए जिन व्यवहारों को स्वीकार किया है, वे ही जनरीतियाँ हैं।

समनर ने जनरीतियों पर एक संस्थापक की तरह कार्य किया है। उन्होंने आदिम जनजातियों की जनरीतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। वे कहते हैं कि व्यवहार के कुछ मानदण्ड एक समाज में कल्याणकारी माने जाते हैं, वे ही दूसरे समाज में अ-कल्याणकारी समझे जाते हैं। कुछ विद्वान जनरीतियों की अपेक्षा रिवाज पद का प्रयोग भी करते हैं। बीयरस्टीड के विचार में जनरीतियाँ और रिवाज पर्यायवाची हैं। यह होते हुए भी समाजशास्त्र के साहित्य में जनरीति पद अधिक प्रचलित है।

जनरीतियों के कई उदाहरण हैं। किसी भी भाषा का व्याकरण और उसकी शब्द शक्ति एक तरह से जनरीति है। सुबह और शाम का भोजन, उसे बनाने की पद्धति, दाँत साफ करना, कुर्सी-मेज का उपयोग आदि जनरीतियाँ हैं। ये जनरीतियाँ जो बार-बार दोहरायी जाती हैं, आदतें कहलाती हैं।

जनरीतियाँ समाज के मानदण्ड हैं और प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह हो गया है कि वह जनरीतियों का पालन करे। पर जनरीतियों का पालन करना हमारे लिए न तो किसी अधिनियम ने आवश्यक किया है और न समाज का कोई अंग इन्हें हम पर थोपता है। ऐसा कोई नियम नहीं है जो हमें पाँव में जूते पहनने के लिए या सिर पर साफा पगड़ी या टोपी पहनने के लिए बाध्य करे, कोई हमें इस बात के लिए भी बाध्य नहीं कर सकता कि हम कप से ही चाय पीये, हिन्दी में ही बात करें और अपने चेहरे पर पाउडर ही लगाये। पुरुष होते हुए भी हमें कोई भी स्त्रियों का सा कमाल रखने या एड़ीदार सेण्डल पहनने से रोक नहीं सकता, पर हम कभी ऐसा करते नहीं। वहाँ तक हम बिना सोचे समझे वही करते हैं जो जनरीतियाँ कहती हैं। जनरीतियाँ एक रिवाज है और उनका पालन हम चेतन या अचेतन अवस्था में करते रहते हैं।

जनरीतियों की परिभाषाएँ

गिलिन एवं गिलिन ने पारम्परिक रूप से जनरीतियों को परिभाषित किया है। वे लिखते हैं

जनरीतियाँ नित्य प्रति जीवन के आचरण के मानदण्ड हैं, जो एक समूह में सामान्यतः अज्ञात रूप में बिना किसी योजना या पूर्व निश्चित विचारों से उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, अपरिचित को बुलाने में हैट को उठाना या हाथ मिलाना। यह सब बिना किसी योजना या विवेकपूर्ण व्यवहार के होता है।

मैकाइवर एवं पेज ने भी अपनी पुस्तक सोसायटी में जनरीतियों की विशदव्याख्या की है। उनका विचार है कि जनरीतियाँ समाज के बुनियादी मानदण्ड हैं। वे लिखते हैं जनरीतियाँ समाज में आचरण करने की स्वीकृति या मान्यता प्राप्त पद्धतियाँ हैं।

गुब्ज और मूर का कहना है कि मनुष्य की आदतों की समग्रता ही या उनका जोड़ ही जनरीतियों को बनाता है। उनके शब्दों में :

जो व्यक्ति के लिए आदतें हैं, वे ही समूह के लिए जनरीतियाँ हैं. एक विशेष परिस्थिति में काम करने की प्रचलित पद्धति जो समाज में सामान्य है, जनरीति है।

जनरीतियों की विशेषताएँ

जनरीतियाँ ही समाज के सदस्यों के मानदण्ड हैं। आदिम समाज में जनरीतियों का दबाव बहुत अधिक होता है। परम्परागत समाजों में भी जनरीतियाँ शक्तिशाली होती हैं। हमारे देश में गमी या मातम के अवसर पर प्रत्येक समूह में निश्चित जनरीतियाँ होती हैं। सामान्यतया ये जनरीतियाँ बराबर व्यवहार में लायी जाती हैं। हमारे यहाँ गौड़, संधाल और भील जैसी जनजातियाँ ब्याज पर धन लेकर भी जनरीतियों का पालन करती हैं। दूसरी ओर विकसित और औद्योगिक देशों में जहाँ व्यक्तिवाद सशक्त होता है, जनरीतियाँ कमजोर हो जाती हैं। यहाँ हम जनरीतियों में पायी जाने वाली कतिपय विशेषताओं का उल्लेख करेंगे :

1. जनरीतियाँ परम्परागत होती हैं

जनरीतियों के माध्यम से ही सामाजिक और सांस्कृतिक निरन्तरता को बनाये रखा जाता है। समाज की जनरीतियाँ ही समाज की धरोहर या सांस्कृतिक पूँजी है। हमारे देश की सभ्यता जो बहुत पुरानी है, उसे बनाये रखने का श्रेय यहाँ की जनरीतियों को है।

2. जनरीतियाँ आम आदमी का सामान्य आचरण बन जाती हैं

जनरीतियाँ इतनी सरल और स्वाभाविक होती हैं कि उन्हें हम अपने व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार से अलग नहीं कर सकते। सच्चाई यह है कि हम कभी भी अपने को जनरीतियों से अलग करके नहीं देखते। हमारे खान-पान और रहन-सहन के तरीके कोई हमने निश्चित किए हों, ऐसा नहीं है। ये तो परम्परा से चने बनाये चले आ रहे हैं। एक तरह से दुर्खीम जिसे सामाजिक तथ्य समझते हैं वे, ही जनरीतियाँ हैं। दाहिने हाथ से खाना, वृद्ध लोगों को आदर देना, स्त्रियों को सम्मान देना आदि जनरीतियाँ ही हैं।

3. जनरीतियाँ पूर्व-चिन्तन का परिणाम नहीं हैं

समाज में कोई भी जनरीतियाँ हों, वे पूर्व निश्चित नहीं हुआ करती। जब समाज में बदलाव आता है, नवीन सामाजिक शक्तियाँ उभर कर आती हैं तो इसके परिणामस्वरूप नयी जनरीतियाँ धीरे-धीरे समाज की अंग बन जाती हैं। उदाहरण के लिए हमारे देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के आन्दोलन में सुभाष चन्द्र बोस ने जय हिन्द का नारा बुलन्द किया था। स्वतंत्रता के बाद यह नारा सार्वजनिक अवसरों पर जनसाधारण का नारा बन गया। विज्ञापन के क्षेत्र में भी जन्म दिन, विवाह, मृत्यु आदि की सूचनाएँ ऐसी कुछ संचार से जुड़ी जनरीतियों द्वारा प्रसारित होती हैं। जनरीतियाँ इस भाँति बराबर बदलती रहती हैं, कुछ जनरीतियाँ ऐसी भी होती हैं जो सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में हाशिये पर आ जाती हैं या लुप्त हो जाती हैं।

4. जनरीतियाँ असंख्य आदतों का पुलन्दा है

समूह की जनरीतियाँ और कुछ न होकर समूह की आदतों का पुलन्दा है। दूसरे शब्दों में समूह के सदस्यों की जो आदतें हैं, वे सम्मिलित रूप से जनरीतियाँ हैं। पुरुषों का सिर के बालों का लम्बा रखना या कान में लीग पहनना व्यक्तिगत आदत होकर भी जनरीतियों का रूप ले लेता है। विदेशों में तो पुरुषों के लम्बे बाल और लीग बहुत बड़ी मात्रा में जनरीति की तरह उभर रहा है।

5. जनरीतियों की उपेक्षा समाज का अनादर है

यह आवश्यक नहीं है कि हम जनरीतियों का पालन अनिवार्य रूप से करें ही। हमें इसके लिए कोई बाध्य नहीं कर सकता। कोई व्यक्ति बायें हाथ से खायें या लिखे तो उससे किसी को शिकायत नहीं हो सकती। पर ऐसे व्यक्ति को समाज उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। जब समाज की उपेक्षा बड़ जाती है, व्यक्ति को कभी-कभी सामाजिक बहिष्कार का सामना भी करना पड़ता है। यहाँ यह अवश्य कहना चाहिए कि अपवाद रूप से जनरीतियों की उपेक्षा करने वाला व्यक्ति समाज में सम्मानजनक स्थान भी ग्रहण कर लेता है। छुआछूत को मानना एक समय में हमारे देश में जनरीति था। गाँधीजी ने इसकी उपेक्षा की और बाद में चलकर वे महात्मा बन गये।

इस भाँति जनरीतियाँ सामाजिक संरचना के दे मानदण्ड हैं जो समाज की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाते हैं। यद्यपि ये समाज के लिए अनिवार्य नहीं है, फिर भी इनका पालन समाज के लगभग सभी सदस्य करते हैं। व्यक्तियों में बराबर यह भय बना रहता है कि समाज कहीं उन्हें हीन दृष्टि से न देखे, इसलिए वे अनिवार्य रूप से जनरीतियों का पालन करते हैं। सामाजिक परिवर्तन के इस दौर में, स्त्रियों के लिए घूँघट रखना या किसी की मृत्यु पर भोजन देना ठीक नहीं समझा जाता, फिर भी रूढ़िवादी व्यक्ति इन जनरीतियों का पालन करते हैं। जनरीतियाँ सामाजिक तथ्यों की तरह है, जिनका समाज पर दबाव बराबर बना रहता है।

रूढ़ियाँ

रूढ़ियाँ अंग्रेजी शब्द मॉरीज का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी शब्द का अनुवाद लेटिन भाषा से है। इसका मतलब रीति-रिवाजों से है, यद्यपि इसका प्रयोग नैतिकता के अर्थ में अधिक किया जाता है। समनर ने पहली बार रूढ़ियों की अवधारणा को समाजशास्त्र में प्रयुक्त किया था। वस्तुतः वे इस अवधारणा के जनक हैं। यह रूढ़ियों के माध्यम से ही होता है कि हम समाज में रहकर अपनी आवश्यकताओं अपेक्षाओं, इच्छाओं को पूरा करते हैं। रूढ़ियों के साथ में हमारे विश्वास और इसी तरह धारणाएँ और कल्याणकारी विचार जुड़े होते हैं। समनर तो कहते हैं कि किसी भी समाज या ऐतिहासिक युग के मुहावरे या संस्कृति को समझने के लिए रूढ़ियों को समझना आवश्यक है।

रूढ़ियाँ समाज के सभी सदस्यों के सोच, क्रिया एवं धारणा को अपने कलेवर में समेट लेती हैं। एक ग्रह से सम्पूर्ण समाज को अपने नियंत्रण में रखने का कार्य रूढ़ियाँ करती हैं। इस सम्बन्ध में समनर लिखते हैं :

रूढ़ियाँ सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहार को राजनीति, समाज और धर्म के क्षेत्र में नियंत्रित करती है। यदि कोई काम चेतन होकर या सोच-समझकर किया जाता है तो वह रूढ़ियों का दुश्मन है। यह इसलिए कि रूढ़ियों का प्रारंभ अचेतन होता है और अचेतन अवस्था में ही इसके माध्यम से हम हमारे मतलब को पूरा करते हैं।

किसी भी एक समूह में रूढ़ियाँ बरताव होती हैं। दूसरी ओर यह अनिवार्य नहीं है कि रूढ़ियाँ हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देती हों। कुछ प्राकृतिक आवश्यकताओं जैसे कि भोजन प्राप्ति या निद्रा पूर्ति में रूढ़ियों की कोई भूमिका नहीं है। यह सब होते हुए भी रूढ़ियाँ व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा से मुक्त हैं। रूढ़ियाँ तो दूसरे अर्थों में समाज की ओर से थोपे हुए व्यवहार के मानदण्ड हैं। वे व्यक्ति की इच्छा से परे है। सामान्यतया समनर आग्रहपूर्वक कहते हैं कि रूढ़ियों को लोग लाभदायक, उचित और कल्याणकारी समझकर स्वीकार करते हैं।

रूढ़ियों की विशेषताएँ

समनर ने रूढ़ियों के कुछ लक्षण दिए हैं। यहाँ हम इन्हें प्रस्तुत करेंगे :

1. रूढ़ियाँ हमारे जीवन की सच्चाई है

सामाजिक रूढ़ियाँ किसी भी मानदण्ड की तरह हमारे अतीत की धरोहर हैं जिन्हें हम पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनाते रहते हैं। रूढ़ियों के स्रोत कई तरह के हैं अतीत के महान ग्रन्थ, मिथिक, महान व्यक्ति आदि। चीन में रूढ़ियाँ कन्फ्यूशियस धर्म से जुड़ी हुई हैं। कुछ इसी तरह जापान की रूढ़ियों का उद्गम स्रोत भगवान बुद्ध हैं। यूरोप और अमेरिका में वे रूढ़ियाँ जो धर्म से बँधी हुई हैं, उनका उद्गम ईसा मसीह और बाईबिल से हैं। इन धार्मिक स्रोतों के अतिरिक्त रूढ़ियाँ इतिहास की कोख से भी निकलती हैं।

समनर का कहना है कि समाज के लोग रूढ़ियों के विषय में कुछ भी कहते रहें, इससे रूढ़ियों का महल कम नहीं होता। समनर ने तो आग्रहपूर्वक कहा है कि रूढ़ियाँ मरती नहीं हैं। और यदि कहीं मरती है तो उनकी सांस बड़ी मुश्किल से निकलती है। रूढ़ियों के प्रति विश्वास का कारण यह है कि लोग अंधविश्वास के साथ भी इसे मानते चले जाते हैं। रूढ़ियाँ समाज और सामूहिक बुद्धि की प्रतीक हैं और समाज कभी गलत नहीं हो सकता। वह तो परमेश्वर है, जनार्दन है। रूढ़ियों के प्रति इस लोक वृत्ति को समनर अपने शब्दों में इस भाँति रखते हैं हमारी संस्थाएँ हमें जैसे मार्गदर्शन और सुझाव देती हैं, उनका परिपालन हम यह मानकर करते हैं कि इसमें कोई न कोई बुद्धिमानी और उपयोगिता हमारे लिये अवश्य होगी।

चाहे हम समाज को कैसे ही समझें, अपनी विवेकशीलता और वैज्ञानिक मुहावरे को लगायें लेकिन सही बात तो यह है कि हम सबके ऊपर रूढ़ियों का राज चलता है। हम ऐसे कई बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को जानते हैं कि जिनकी सांस दर सांस प्रयोगशाला की चारदीवारी में चलती है, वे भी रूढ़ियों के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। इस वृहद् जीवन में कहीं खुलकर और कहीं छिपकर रूढ़ियाँ समाज को प्रभावित करती रहती हैं। उदाहरण के लिए प्रजातंत्र, चाहे वह ब्रिटेन में हो या भारत में, सभी इसको एक रूढ़ि की तरह लेते हैं।

समनर कहते हैं कि रूढ़ियों की मनुष्य के जीवन में जड़ें तब से जमी होती हैं, जब वह अचेतन अवस्था में केवल शिशु मात्र होता है। जैसे कि शिशु चलना-बोलना सीखता है। वैसे ही वह अपने समूह की परम्परा, रीति-रिवाज और आदत को भी अपने अन्दर समाहित कर लेता है। यह शिशु जब बड़ा हो जाता है तब उसकी धारणाएँ व विचारधारा उसके चिन्तन और व्यवहार की भाग बन जाती है। वह चाहे तब भी इनका विरोध नहीं कर सकता। इसी कारण सामान्यतया वह यह कभी नहीं सोचता कि उसे क्या करना चाहिए। उसकी गतिविधियाँ तो रूढ़ियों के मार्गदर्शन में ही चलती हैं। इसी कारण हम कहते हैं कि सभी व्यक्तियों के लिए रूढ़ियाँ समाज की सच्चाई हैं, असलियत हैं, जीवन तथ्य हैं और इस कारण उनकी उपेक्षा नहीं हो सकती। उनका विकल्प नहीं हो सकता।

2. रूढ़ियों के अनुष्ठान

अनुष्ठान के लिए अंग्रेजी में प्रचलित शब्द रिच्युअल है। कई बार हिन्दी में अनुष्ठान को कर्मकाण्ड भी कहते हैं। हमारे देश में कर्मकाण्ड का प्रयोग सामान्यतया हिन्दू धर्म से जुड़ा हुआ है। धर्म से जुड़े हुए अनुष्ठान-पूजा, नैवेद्य आरती, प्रसाद, मूल पाठ आदि अनुष्ठान हैं, लेकिन एक व्यक्ति जब इन अनुष्ठानों को करता है तो इसके पीछे जो तर्क हैं उन्हें वह नहीं जानता और शायद जानना भी नहीं चाहता है। आम हिन्दू की यह धारणा है कि अग्नि के सामने सात फेरे लगाने से विवाह पवित्र बंधन बन जाता है। इसके पीछे तर्क क्या है। वह नहीं पूछता। रूढ़ियों के सम्बन्ध में भी इसी तरह का अनुष्ठान जुड़ा हुआ है। होता यह है कि समाज या समूह के सभी लोग रूढ़ियों का परिपालन किसी अनुष्ठान की तरह करते हैं और कभी यह नहीं पूछते कि इनके पीछे कौनसा विवेक काम करता है।

3. रूढ़ियाँ निष्क्रिय और कठोर होती हे

हमारी रूढ़ियों में कई रूढ़ियाँ ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध विवाह, उत्तराधिकार और धर्म से है। ये रूढ़ियाँ ऐसी हैं जिन्हें बदलना बहुत कठिन है। यह माना जाता है कि रूढ़ियाँ समाज की सच्चाई हैं, सभ्यता की कड़ी हैं और इन्हें बदला नहीं जा सकता। यद्यपि इन रूढ़ियों का जुड़ाव आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन से है, फिर भी अपने आकार में ये इतनी वृहद् हैं कि सम्पूर्ण जीवन को अपने परिवेश में घेर लेती हैं। इस सम्बन्ध में समनर लिखते हैं:

हम देखते हैं कि रूढ़ियाँ व्यवहार की वृहद् व्यवस्था है, जिनमें हमारे सम्पूर्ण जीवन का समावेश हो जाता है और जो हमारे सभी हेतुओं को पूरा करती है।

समनर का तो यहाँ तक कहना है कि रूढ़ियाँ अपने आप में एक दर्शन और आचार संहिता है। रूढ़ियों का दुनियाभर में यह मुहावरा है। इसे करो, इसे मत करो। इसके अतिरिक्त रूढ़ियाँ बड़े रहस्यवादी का से पारितोशिक और दण्ड विधान भी प्रस्तावित करती है। रूढ़ियों का तो आग्रह है कि उनका निर्माण बड़े सोच विचार और अनुभव के बाद हुआ है। वे कभी भी हमारे विचारों को उद्वेलित नहीं करती। वे तो बनी बनायीं हैं, उनकी उपयोगिता अपने आप में सिद्ध है और इसलिए इनके बारे में किसी व्यक्ति को चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं है। चिन्तन तो पुरखों ने करके ही इन्हें बनाया था। वस्तुतः रूढ़ियों-प्रश्न नहीं हैं, वे तो समस्याओं की उत्तर हैं। समनर कहते हैं कि रूढ़ियाँ नयी पीढ़ियों पर बराबर अपना दबाव रखती हैं और यह दबाव पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है। रूढ़ियाँ तो अपने अंतिम स्वरूप में हैं, उनमें संशोधन की गुंजाइश नहीं। यह इसलिए कि रूढ़ियाँ सत्य है, निरन्तर हैं।

कानून

समनर ने कानून की विशेषताओं को बताने से पहले इसका जनरीतियों और रूढ़ियों के साथ अन्तर किया है। जनरीतियाँ और रूढ़ियाँ स्वाभाविक रूप से बनती रहती हैं। ये तो समाज की संस्कृति से जुड़ी हैं और समाज जिस तरह बदलता है, जनरीतियों और रूढ़ियों में भी संशोधन और बदलाव आता रहता है। कानून में कोई ऐसी प्रक्रिया काम नहीं करती। कानून किसी प्रजातांत्रिक संस्था द्वारा पारित किया जाता है। जनरीतियों का, रूढ़ियों की तरह स्वाभाविक उद्विकास नहीं होता। एक दूसरा अन्तर भी इनमें हैं। पारित होने के बाद कानून किसी राज्य या राष्ट्र के क्षेत्र में लागू होता है जबकि जनरीतियाँ और रूढ़ियाँ केवल एक निश्चित समूह पर ही लागू होती हैं, सर्च क्षेत्र या राष्ट्र पर नहीं। तीसरा, कानून को अमल में लाने के लिए राज्य, पुलिस और नागरिक होते हैं। इसके लिए न्यायपालिका होती है और अपराधी को दण्ड मिलने पर कारागार में भेजा जाता है। जनरीतियों और रूढ़ियों की अवहेलना करने पर कुछ इस तरह का दण्ड नहीं दिया जाता। ऐसे अपराध में जाति या संस्थागत निर्णय करने की परम्परागत पद्धति होती है और उसी के अनुसार दण्ड दिया जाता है। यह दण्ड कभी भी कारागृह का नहीं होता, इसमें हुक्का-पानी बन्द किया जाता है, अपराधी को जाति के लिए भोज देने को कहा जा सकता है या गंगा स्नान करने का आदेश दिया जा सकता है। देखा जाए तो जनरीति रूढ़ि और कानून में बुनियादी अन्तर है, यद्यपि ये तीनों ऐसे मानदण्ड हैं जो समाज के सदस्यों के व्यवहार पर नियंत्रण रखते हैं। कानून की एक मानदण्ड की तरह कुछ विशेषताएँ हैं, जिनका उल्लेख हम नीचे करेंगे।

कानून समाज की संरचना से जुड़ा होता है

समाज अपने विकास के दौर में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है, कानून भी उतना जटिल होता जाता है। आदिम समाज की तुलना में सभ्य समाज में कानून अधिक जटिल होता है और इसी तरह औद्योगिक-पूँजीवादी-महानगर समाजों

में कानून और अधिक जटिल हो जाता है। वस्तुतः कानून और कुछ न होकर एक ऐसा मानदण्ड है जिसके माध्यम से समाज के सम्बद्ध चरित्र को बनाये रखा जाता है। जैसा समाज, वैसा कानून।

कानून योजनाबद्ध और सुनिश्चित होते हैं

जनरीतियाँ या रूढ़ियाँ किसी निश्चित योजना द्वारा नहीं बनायी जाती। इसके विपरीत कानून बड़े सोच-विचार और वाद-विवाद के पश्चात् रनाये जाते हैं। हमारे देश की संसद ने हिन्दू कोड बिल को लेकर कई वर्षों तक वाद-विवाद किया और अन्त में इसे इस नाम से एवं इसी रूप में जिसमें प्रस्तुत किया गया था, पारित नहीं किया गया। प्रस्तावित कोड बिल को कई अधिनियमों में संसद ने पारित किया। महत्वपूर्ण बात यह है कि जो व्यवहार जनरीति या रूढ़ि होते हैं, आगे चलकर वे ही कानून बन जाते हैं।

कानून समय के परिवर्तन के साथ संशोधित होता है

यह ठीक है कि कानून अंधे की लकड़ी है, इसकी आँखें सफेद पट्टी से बंधी हुई हैं, फिर भी इसमें परिवर्तित और संशोधित होने की गुंजाइश होती है। यदि समाज अधिक गतिमान है तो उसके कानून में भी उसी गति से परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में जब औद्योगीकरण आया, पगार, दुर्घटना आदि की समस्याएँ भी उभरकर हमारे सामने आयी, परिणामस्वरूप औद्योगिक कानून बने। शराब बन्दी या अस्पृश्यता निवारण कानून नये परिवर्तन हैं। अब तो कुछ राज्यों में, महिलाओं के आन्दोलन और आग्रह के परिणामस्वरूप शराब बन्दी कानून भी पारित हुए हैं। दहेज पर भी कानूनी प्रतिबंध लगाया गया है। आज तो यह कहा जाता है कि भारत में जितने कानून हैं, शायद दुनिया में इतने कानून कहीं ओर नहीं। यह बात अलग है कि कानून की क्रियान्विति किस सीमा तक की जाती है। कानून की इस कमजोरी के होते हुए भी निश्चित रूप से सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में कानून की भूमिका बहुत अधिक है। आज के विकासशील देशों में कानून को परिवर्तन के एक सशक्त एजेंट की तरह लिया जाता है।

कानून के प्रति पवित्रता और श्रद्धा होती है

यद्यपि राज्य व केन्द्र द्वारा कानून बनाये जाते हैं, फिर भी लोगों का इसके प्रति आदर और समान होता है। सरकार भी एक बार कानून बन जाने के बाद उसकी अवहेलना नहीं कर सकती। ऐसा करना न्यायाधीश की अवमानना है। सब में देखा जाए तो अप्रत्यक्ष रूप से कानून जनरीतियों और रूढ़ियों से जुड़े होते हैं, इसी कारण आम आदमी कानून से डरता है।

इस तरह कानून राज्य द्वारा बनाया गया एक मानदण्ड है जो लोगों के सामाजिक सम्बन्ध को नियंत्रित करता है। यह सामाजिक परिवर्तन का एक सर्वमान्य साधन है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नियंत्रित करने के लिए भी कानून का प्रयोग किया जाता है।

9.5 सामाजिक मूल्य : अर्थ एवं परिभाषा

हम अपने दैनिक जीवन में मूल्य शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग करते हैं। जब हम कोई वस्तु खरीदते हैं तो उसका मूल्य पूछते हैं, इसी प्रकार किसी वस्तु के गुण-अवगुण अथवा उसकी उपयोगिता की जानकारी लेते हैं, तब जाकर उसके वास्तविक मूल्य के करीब पहुँचते हैं। समाजशास्त्र में मूल्य का अर्थ क्या अच्छा या क्या दुरा है या क्या वांछनीय है या अवांछनीय आदि प्रश्नों पर समाज के लोगों द्वारा दृढ़ता से बनाया गया विचार है।

मूल्य वह मान है जिससे व्यवहार को स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाता है। समानता, स्वतंत्रता, विवेकशीलता, उपलब्धि, भौतिकवाद आदि कुछ मूल्य के उदाहरण हैं, जिन्हें आधुनिक समाज महत्व देता है।

हेरालाम्बोस ने सामाजिक मूल्यों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि :

मूल विश्वास है और विश्वास यह कि कुछ वस्तुएँ अच्छी हैं और इन्हें अपनाना चाहिए। पश्चिमी औद्योगिक समाज में यह कहा जाता है कि व्यक्तिगत उपलब्धि और भौतिक प्राप्ति बहुत बड़ा मूल्य है। इस तरह व्यक्ति मानता है कि उसे अपने वर्ग में जिसका वह सदस्य है शीर्ष स्थान ग्रहण करना चाहिए। जो खेल के मैदान में दौड़ होती है, उसमें सबसे आगे आना चाहिए और जिस धंधे में वह काम करता है, उसमें अग्रणी स्थान पाना चाहिए।

यदि हम हेरालाम्बोस के पश्चिमी औद्योगिक समाज के मूल्यों के उदाहरण को हमारे देश पर लगाएँ तो कहना होगा कि हमारे देश का व्यक्ति अपने परलोक को सुधारना चाहता है। वह अपना नाम दानियों सेवाभावियों में सम्मिलित करना चाहता है और हाल में जिन नये मूल्यों को उसने अपनाया है, उसमें वह अधिक से अधिक भौतिकवादी रचना चाहता है, आधुनिकता को अपनाना चाहता है और अधिक से अधिक सुविधाओं का उपयोग करना चाहता है। कई बार ऐसा भी होता है कि हमारे समाज के मानदण्ड हमारे मूल्यों को अभिव्यक्ति भी देते हैं। एक ही मूल्य में कई मानदण्ड निहित होते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य की जिन्दगी को सबसे ऊँचे मूल्यों के साथ में जोड़ा जाता है। यदि दुनिया में अधिक से अधिक मूल्यवान कोई वस्तु है तो वह मनुष्य का जीवन है। इस मूल्य के पीछे मानदण्डों की भूमिका बहुत स्पष्ट है। जब मनुष्य का जीवन मूल्यवान बन जाता है तो व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वास्थ्य, पर्याप्त पोषण जैसे मानदण्ड सहज रूप से महत्वपूर्ण बन जाते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारे मानदण्ड की हमारे मूल्यों की अभिव्यक्ति है। अधिकतर समाजशास्त्रियों का अभिमत है कि मनुष्य समाज को बनाए रखने के लिए, उसे गतिशील रखने के लिए, मूल्यों का होना आवश्यक है और ये मूल साझा मूल्य होते हैं, समूह या समाज के सदस्यों की इसमें समान भागीदारी होती है।

हेरी एम. जॉनसन ने अपनी पुस्तक सिस्टेमेटिक सोशियोलॉजी में संस्कृति की व्याख्या करते हुए कहा है कि मूल्य भौतिक रूप से संस्कृति के अंग होते हैं। संस्कृति अपने क्षेत्र में वृहद् है। इसमें भौतिक और अभौतिक दोनों तल होते हैं। इन तलों का मूल्यांकन संस्कृति में किया जाता है। इन तत्वों के प्रति निश्चित अभिवृत्तियाँ होती हैं। हिन्दू संस्कृति में नारियल, फूल, अनाज आदि पवित्र समझे जाते हैं। पवित्रता एक मूल्य है। जब नारियल देवता को बढ़ाया जाता है तो इसके पीछे पवित्रता का मूल्य काम करता है। इसी तरह फूल के साथ भी पवित्रता का स्व लगा हुआ है। वस्तुओं के प्रति यह अभिवृत्ति मूल्य से की जाती है। इस दृष्टि से मूल मानक का एक प्रकार है। जॉनसन कहते हैं:

मूल्य की व्याख्या एक विचारधारा या मानदण्ड की तरह की जा सकती है। यह विचारधारा सांस्कृतिक हो सकती है या केवल व्यक्तिगत। इस धारणा के कारण ही एक वस्तु की तुलना दूसरी वस्तु से की जाती है। जिस व्यक्ति का मूल विचारधारा के कारण ऊँचा होता है, उसे स्वीकार किया जाता है, नीचा होता है उसे अस्वीकार किया जाता है।

मूल्य वस्तुतः संस्कृति का एक अंग है और इस मूल्य को प्राप्त करने का प्रयास व्यक्ति करता है, लेकिन प्राप्ति का यह प्रयास प्रत्येक व्यक्ति करता हो ऐसा नहीं है। समाज की दृष्टि से मानदण्ड को स्वीकार करना तो आवश्यक है और यह इसलिए कि इसके पीछे दण्ड होता है, लेकिन मूल की स्वीकृति तो व्यक्ति का विकल्प है। हमने प्रारंभ में कहा कि मूल्य एक समान नहीं होते। कुछ मूल्य सार्वभौमिक होते हैं और कुछ तात्कालिक।

9.6 सामाजिक मूल्यों की विशेषताएँ

मूल्य की बहुत बड़ी प्रकृति इसका सर्वव्यापी होना है। दया एक मूल्य है और यह दया जिसे हम जीव दया के नाम से जानते हैं, सर्वव्यापी है। आदिम समाज से लेकर महानगर तक दया एक मूल्य की तरह स्वीकार की जाती है।

भगवान बुद्ध के बाल्यकाल की कथा हमारे देश में प्रचलित है। जब बुद्ध सिद्धार्थ थे यानी बाल्यावस्था में थे उन्होंने घायल हंस के प्रति दया बताकर उसे बचा लिया और राजा के निर्णय के साथ हंस उनका हो गया। मूल्य सामान्यतया विश्वव्यापी और सर्वकालिक होते हैं। यहाँ हम मूल्यों की कुछ उल्लेखनीय विशेषताओं का वर्णन करेंगे।

1. मूल्य मानवीय होते हैं

किसी भी समूह या समाज के लिए मूल्य आदर्श होते हैं। समूह के सदस्य का यह बराबर प्रयास रहता है कि वह निर्धारित मूल्यों को प्राप्त कर सके। हर विद्यार्थी जो परीक्षा में बैठता है, पूरी कोशिश करता है कि अधिकतम अंकों को प्राप्त कर सके। अधिकतम अंकों की प्राप्ति सामान्यतया विद्यार्थी का मूल्य होता है। मानकीय मूल्य इस अर्थ में समूह या समाज के विश्वास और सिद्धान्त होते हैं। आदर्शात्मक मूल्यों की सहायता से व्यक्ति अपने व्यवहार का मार्गदर्शन प्राप्त करता है। लक्ष्य की प्राप्ति तो किसी भी समूह की होती है, लेकिन इस प्राप्ति के साधन मूल्यों द्वारा निर्धारित होते हैं। यह भी संभव है कि लक्ष्य के बदलने की स्थिति में, मूल्यों में बदलाव भी आ जाता है। इस अर्थ में मूल्य जड़ न होकर चर होते हैं, उनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इस बदलाव के होते हुए भी जिन्हें समाज सार भाग या कोर वेल्यूज मूल्य कहता है, उनमें परिवर्तन न्यूनतम होता है।

2. मूल्यों में नैतिकता होती है

एक प्रकार से मूल्य नीतिगत होते हैं। मानव समाज की जो सर्वव्यापी भावना है, वह इसी नैतिकता में निहित होती है। नैतिक मूल्य सार भाग मूल्य है। सभी समाजों में मिलते हैं। गाँधीजी आग्रहपूर्वक कहते थे कि हमें भारत में एक नैतिक समाज का निर्माण करना है। मौलिक रूप से व्यक्ति ईमानदार, अहिंसक और सत्यवादी होता है। उसके इस व्यवहार पर सभी को विश्वास करना चाहिए। इन नैतिक मूल्यों पर लोगों का विश्वास न हो तो समझ लीजिए, समाज जिस धरातल पर खड़ा है वह धरातल ही धंस जाएगा। इसी कारण हम प्रत्येक औपचारिक और अनौपचारिक संगठन में नैतिक मूल्यों की सराहना करते हैं। आज के बाजार को चलाने में नैतिकता एक बहुत बड़ी धरोहर है। लाखों रुपयों के धन्धे बाजार में केवल नैतिकता के आधार पर पूरे किए जाते हैं। नैतिकता का आधार सामान्यतया धर्म होता है। इसी कारण स्कूली शिक्षा में भी नैतिक स्नो को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता है। ऐसी अवस्था में हमारे मूल्य चाहे जिस प्रकार के हों – उपयोगितावादी, लोकोत्तर आदि उनमें नैतिकता का पुट पर्याप्त मात्रा में होता है।

3. वस्तुओं के वरण में मूल्यों की प्रधानता

व्यक्ति या समाज को आये दिन अगणित वस्तुओं और विचारों में अपनी पसंद निश्चित करनी होती है। निश्चय की इस स्थिति में मूल्यों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। व्यक्ति जब विचारों या वस्तुओं की पसंद को तय करता है तो इसका आधार इनसे जुड़े हुए मूल्य होते हैं। आज विकासशील देशों में एक बहुत बड़ी बहस चल रही है। यह बहस पर्यावरणवादियों और विकासवादियों के बीच में है। भारत में, उदाहरण के लिए टिहरी बाँध या सरदार सरोवर बाँध की चर्चा होती है, तो इसमें पर्यावरणवादी इस मूल्य पर जोर देते हैं कि बाँध बनने के परिणामस्वरूप विस्थापितों की क्या स्थिति रहेगी। इस बहस में मुख्य मुद्दा मूल्यों की भूमिका का है। कोई भी विकास योजना किसी भी स्थिति में मानवीय मूल्यों की अवहेलना नहीं कर सकती।

4. मूल्यों के कारण समाज की सम्बद्धता बनी रहती है

समाजशास्त्र के चोटी के लेखकों ने बराबर कहा है कि किसी भी समाज या इसी तरह समूह में सम्बद्धता और एकता बनाये रखने का काम मूल्य करते हैं। इसी संदर्भ में कहा जाता है कि भारतीय समाज की एकता इस तथ्य

पर निर्भर है कि हम कुछ सामान्य मूल्यों में मतैक्य रखें। मूल्यों में हमारी साझेदारी होनी चाहिए। यदि साझेदारी नहीं हुई तो समाज ताश के पत्तों की तरह ढह जाएगा। यह इसी अर्थ में कहा जाता है कि भारतीय संविधान हमारे मूलों का एक दस्तावेज है। यह संविधान ही है जिसका कहना है कि प्रजातंत्र, धर्म निरपेक्षता, विवेकशीलता, सत्य आदि हमारे मूल हैं। इन मूल्यों का पालन यदि नागरिक नहीं करते तो समाज अराजकता, हिंसा और अशान्ति की गिरफ्त में आ जाएगा।

5. मूल्यों में सभी की भागीदारी होती है

जब मूल्य समाज को बाँधे रखने की क्षमता रखते हैं तो इसका मतलब हुआ कि समाज के सभी सदस्य एक ही या समान मूल्यों को स्वीकार करते हैं। यदि लोगों के मूल्य समान नहीं होते तो लोग एक सूत्र में बाँधे नहीं रह सकते। इस प्रकार की भागीदारी अपने आप में एक सामाजिक प्रक्रिया है। किसी भी समाज में मूल्यों के प्रति सम्पूर्ण भागीदारी पाना एक आदर्श मात्र ही है। वास्तविकता यह है कि कुछ समाजों में भागीदारी का अंश अधिक होता है जबकि विकसित समाजों में हेतुओं की विविधता के कारण प्रतिबद्धता की सीमा निम्न होती है। यहाँ हम इस तथ्य पर जोर देना चाहते हैं कि साझा मूल्यों का होना किसी भी समाज के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है और मूल्यों का साझा होना एक सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम है।

6. मूल्यों की निरन्तरता का कारण संवेग और उद्वेग

मूल्य तो एक प्रकार के विश्वास हैं, इनमें तर्क की खोज करना लाभदायक नहीं होता। माता-पिता का सम्मान करना चाहिए, यदि इस मूल्य को तर्क की कसौटी पर रखा जाये तो हम एक दुश्क्र में पहुँच जायेंगे। कोई कहेगा यदि हमें संसार में माता-पिता लाए हैं तो इसके पीछे इनका क्या उद्देश्य था? क्या हमारी उत्पत्ति उनके लैंगिक सम्बन्धों का परिणाम मात्र नहीं है? माता-पिता के प्रति आदर से जुड़े हुए इस मूल्य पर कई अभिष्ट सवाल किये जा सकते हैं। ऐसे ही असुविधाजनक प्रश्न अध्यापक के प्रति जुड़े आदर्श मूल्यों पर भी किये जा सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि आज का अध्यापक प्राथमिक शाला से लेकर विश्वविद्यालय के परिसर तक कई तरह के दुर्गुणों से ग्रस्त है। उसने ज्ञान को हाशिया पर खड़ा कर दिया है और इसी तरह के कई तर्क हमारे प्रचलित मूल्यों के प्रति दिये जा सकते हैं। यह सब होते हुए भी मूल्य सभी समाजों में होते हैं और सामान्य आदमी की उनके प्रति आस्था होती है। इसका कारण यह है कि मूल्यों के पीछे हमारी भावनाएँ होती हैं, संवेग होते हैं। ये भावनाएँ ही हैं जिन्होंने श्रवण कुमार को अपने माता-पिता को कावड़ में उठाए फिरने की प्रेरणा दी। निश्चित रूप से मूल्यों के पीछे सकेगें और मनुष्य की सुकोमल भावनाओं की बहुत बड़ी प्रेरणा होती है।

7. मूल्य लोक कल्याण से प्रेरित होते हैं

मूल्यों में नकारात्मक तत्व नहीं होते, वे अनिवार्य रूप से सकारात्मक होते हैं। इनके पीछे मानव कल्याण की भावना सुदृढ़ होती है। हमें विश्व बंधुत्व की चर्चा करनी चाहिए, ऐसे अगणित मूल समाज में है जिनका उद्देश्य जनकल्याण करना होता है। यदि हम दुनिया के बड़े-बड़े धर्मों – ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, हिन्दू आदि में निहित मूल्यों की कोई तालिका बनायें तो निश्चित रूप से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि ये मूल मनुष्य के चरम विकास के लिए होते हैं।

8. मूल्यों में सोपान होते हे

सभी मूल्य समान नहीं होते। उनमें एक सोपान व्यवस्था होती है। संस्कृत साहित्य में एक श्लोक है जिसका अर्थ यह है कि हमें कुल के भले के लिए व्यक्ति को त्यागना पड़े, गाँव के भले के लिए कुल का त्याग करना पड़ेगा और देश के हित के लिए गाँव को न्यौछावर करना होगा। इस तरह का श्लोक मूल्यों के सोपान की ओर संकेत करता है

। एक और उदाहरण है हमारे कुछ मूल्य सांसारिक होते हैं, कुछ तात्कालिक और इन सबसे ऊपर लोकोत्तर मूल होते हैं जिनका संबंध आत्मा और परमात्मा से होता है। यदि व्यक्ति सहानुभूतिपूर्वक दूसरों की पीड़ा और वेदना को समझता है तो यह सांसारिक मूल्य है, लेकिन जब वह इससे ऊपर उठकर परमात्मा के साथ अपने आपको जोड़ता है तो यह मूल्यों के सोपान का शीर्ष स्थान है। मूल्यों का यह सोपान व्यक्ति से चलकर राष्ट्र और वसुधा की ऊँचाइयों तक बना हुआ है।

9.7 सामाजिक मूल्यों का महत्व

सामाजिक मूल्य, सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण घटक है और थे सामाजिक सम्बन्धों को एक रूप देते हैं। सामाजिक मूल्य सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करते हैं जिससे सामाजिक संरचना की निरन्तरता बनी रहती है। अगर हम व्यक्ति की बात करें तो उसके लक्ष्य वे साधन जिनसे वे लक्ष्य प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं, दोनों ही उसके मूल्यों से निर्धारित होते हैं। व्यक्ति मूल्यों के आधार पर ही सही व गलत का निर्णय कर पाता है। इस प्रकार मूल्य सामाजिक चेतना के मूल आधार है। मूल्यों के कारण ही समाज का एकीकरण संभव होता है। यदि एक समाज के सदस्य समान मूल्यों को ध्यान में रखकर आचरण करते हैं तो वे एक सूत्रता का अनुभव करते हैं।

9.8 सारांश

इस इकाई में हमने समाजशास्त्र की कतिपय महत्वपूर्ण व बुनियादी अवधारणाएँ सामाजिक मानदण्ड, प्रतिमान, आदर्श नियम, मानक तथा सामाजिक सन्तों का विस्तार से अध्ययन किया है। व्यवहार में सांस्कृतिक एवं संस्थागत तरीकों को ही सामाजिक मानदण्ड कहा जाता है। ये समाज के मेरुदण्ड के समान हैं जिनके अभाव में कोई भी समाज व्यवस्थित रूप से चल नहीं सकता। इसी प्रकार सामाजिक मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ तथा लक्ष्य हैं जिनका आन्तरीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो प्राकृतिक अधिमान्यताएँ, मानक या अभिलाषाएँ बन जाती हैं।

इस प्रकार सामाजिक प्रतिमान और मूल्य समाज में एकरूपता बनाये रखने में तथा समाज के सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

9.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक मानदण्ड को परिभाषित कीजिये
2. सामाजिक मानदण्डों वर्गीकरण कीजिये
3. सामाजिक मूल्यों से आप क्या समझते हैं
4. सामाजिक मूल्यों की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये
5. सामाजिक मूल्यों के महत्व को समझाइए

9.10 संदर्भ ग्रंथ

1. गिडेन्स, एन्थोनी, सोशियोलॉजी, चतुर्थ संस्करण पोलिटी, 2001.
2. दोषी एवं जैन, समाजशास्त्र : नई दिशाएँ, नेशनल, जयपुर, 2002.
3. रावत, एचके., सोशियोलॉजी, बेसिक कन्सेप्ट, रावत, जयपुर, 2007.

सामाजिक प्रक्रियाएँ : सहयोग, प्रतियोगिता एवं संघर्ष

इकाई की रूपरेखा

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 सामाजिक प्रक्रिया से अभिप्राय
- 10.3 सहयोग
- 10.4 प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा
- 10.5 संघर्ष
- 10.6 सारांश
- 10.7 बोध प्रश्न
- 10.8 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- सामाजिक प्रक्रिया की अवधारणा समझ सकेंगे।
- सामाजिक प्रक्रिया के मुख्य तत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- सामाजिक प्रक्रिया के विभिन्न स्वरूप के बारे में समझ सकेंगे।
- सहयोग, प्रतियोगिता और संघर्ष की अवधारणा, परिभाषाएँ, विशेषताएँ और प्रकार समझ सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

सामाजिक प्रक्रिया समाजशास्त्र की बहुत महत्वपूर्ण अवधारणा है। सामाजिक प्रक्रिया के द्वारा ही समाज में निरन्तरता आती है। सामाजिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत व्यक्तियों के बीच में अन्तःक्रियाएँ होती हैं। मनुष्य अपने स्वभाव, आवश्यकता तथा भूमिकाओं के कारण समाज में अनेक क्रियाएँ करता है। सामाजिक क्रियाओं को करते समय वह दूसरों के सम्पर्क में आता है और सम्पर्क के माध्यम से संचार होता है। अतः अन्तःक्रियाओं के बीच में सम्पर्क और संचार होता है और यही अन्तःक्रिया समाज को गति देती है। सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक व्यवस्था और स्वयं समाज को भली-भाँति समझने के लिए सामाजिक प्रक्रिया एवं इनके प्रमुख स्वरूपों को समझना आवश्यक है। सामाजिक प्रक्रिया या अन्तःक्रिया के अनेक प्रकार हैं। कुछ अन्तःक्रियाओं द्वारा व्यक्ति एक दूसरे के निकट आते हैं और मिलजुल कर काम करते हैं। दूसरी अन्तःक्रियाएँ व्यक्तियों अथवा समूहों के बीच दूरी को बढ़ाती हैं। इस इकाई में तीन प्रमुख सामाजिक प्रक्रिया – सहयोग, प्रतियोगिता और संघर्ष का अध्ययन किया जाएगा।

10.2 सामाजिक प्रक्रिया का अभिप्राय

समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक क्रमबद्ध प्रणाली है। प्रत्येक समाज में व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं तथा समाज के नियमों के अनुसार व्यवहार करते हैं। किसी भी क्रिया का निरन्तर रूप से होना ही प्रक्रिया कहलाता है।

सामाजिक प्रक्रिया अन्तःक्रिया से प्रारंभ होती है। अन्तःक्रिया के विभिन्न स्वरूपों को सामाजिक प्रक्रिया कहा जाता है। यह अन्तःक्रिया दो या अधिक व्यक्तियों से होती है। व्यक्ति और समूह में होती है या समूह और समूह में होती है। जब अन्तःक्रिया में निरन्तरता पायी जाती है और साथ ही जब वह किसी निश्चित परिणाम की ओर बढ़ती है तो ऐसी अन्तःक्रिया सामाजिक प्रक्रिया के नाम से जानी जाती है। सामाजिक जीवन के बीच लगातार लोग एक दूसरे के निकट आते हैं, आपस में सहयोग करते हैं, अपने हितों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी करते हैं।

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार

“सामाजिक प्रक्रियाओं से हमारा तात्पर्य अन्तःक्रिया के उन तरीकों से हैं, जिन्हें हम जब व्यक्ति और समूह मिलते हैं और सम्बन्धों की व्यवस्था स्थापित करते हैं या जब जीवन के प्रचलित तरीकों में गड़बड़ होती है, देख सकते हैं।”

बीसेन्ज तथा बीसेन्ज के अनुसार –

“अन्तःक्रिया के विभिन्न स्वरूप ही सामाजिक प्रक्रिया कहलाते हैं।”

मेक्स लर्नर के अनुसार -

“सामाजिक प्रक्रिया के मूल में इस प्रकार गति, परिवर्तन, प्रवाह और समाज के सतत् परिवर्तित होने का अभिप्राय होता है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक प्रक्रिया सामाजिक जीवन में सदैव बनी रहने वाली और साथ ही परस्पर संबंधित घटनाओं का वह क्रम है जो विशिष्ट परिणाम या परिवर्तन को जन्म देने के लिए उत्तरदायी है।

सामाजिक प्रक्रिया के आवश्यक तत्व

सामाजिक प्रक्रिया अन्तःक्रिया से प्रारम्भ होती है। अन्तःक्रिया सामाजिक प्रक्रिया की बुनियादी इकाई है।

जोनाथन टर्नर के अनुसार

अन्तःक्रिया वह सामाजिक प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को पारस्परिक रूप से प्रभावित करती है और ऐसा करने में लोग संयुक्त क्रियाओं के प्रतिमान में नयी क्रियाओं की शुरुआत करते हैं, उनमें परिवर्तन लाते हैं या इन क्रियाओं को बन्द कर देते हैं। मतलब हुआ जन्म के बाद ही लोगों में अन्तःक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।”

अतः अन्तःक्रिया व्यक्तियों को पारस्परिक रूप से प्रभावित करने की क्रिया को कहते हैं। अन्तःक्रिया दो या अधिक व्यक्तियों, व्यक्ति और समूह या समूह और समूह में होती है। समाज और संस्कृति दोनों ही सामाजिक अन्तःक्रिया की उपज है।

अन्तःक्रिया में दो तत्व महत्वपूर्ण हैं –

अ – उत्तेजना.

ब – अनुक्रिया

अन्तःक्रिया के लिए दोनों ही तत्व महत्वपूर्ण हैं क्योंकि अन्तःक्रिया दो पक्षीय प्रक्रिया है। मान लीजिए, आप आपके अध्यापक से कक्षा में आने के लिए अनुमति माँगते हैं और अध्यापक आपको अन्दर आने के लिए कहते हैं। यहाँ आपका अध्यापक से पूछना अध्यापक के लिए उत्तेजना हुआ और आपके लिए अनुक्रिया।

अन्तःक्रिया के तत्व

सामाजिक अन्तःक्रिया के लिए सम्पर्क तथा संचार का होना आवश्यक है। गिलिन और गिलिन ने अन्तःक्रिया के दो आवश्यक तत्व बताए हैं –

अ – सामाजिक सम्पर्क

ब – संचार

किसी भी समाज में जब अन्तःक्रिया होती है तो लोगों के बीच सामाजिक सम्पर्क होते हैं और इसके बाद में संचार होता है।

सामाजिक अन्तःक्रिया की इन दशाओं का उल्लेख यहाँ किया गया है –

अ– सामाजिक सम्पर्क

सम्पर्क सामाजिक अन्तःक्रिया की पूर्वापेक्षा है। सामान्य बोलचाल की भाषा में दो व्यक्तियों का पास आना सम्पर्क कहलाता है। आंतरिक अर्थ के अभाव में भौतिक निकटता से ही सम्पर्क नहीं बनता है।

किंग्सले डेविस के अनुसार सम्पर्क का स्वरूप तभी सामाजिक होता है, जब सम्बन्ध व्यक्तियों के लिए उसमें कोई अर्थ हो और उनमें पारस्परिक प्रत्युत्तर की भावना हो। दूसरे शब्दों में मानवीय सम्पर्क और अन्तःक्रिया स्वयं संचारात्मक हैं।

सम्पर्क दो प्रकार के हो सकते हैं –

अ – प्रत्यक्ष सम्पर्क / प्राथमिक सम्पर्क

ब – अप्रत्यक्ष सम्पर्क / द्वैतीयक सम्पर्क

प्रत्यक्ष सम्पर्क या प्राथमिक सम्पर्क में अन्तःक्रिया करने वाले एक-दूसरे के शारीरिक सम्पर्क में रहते हैं या सम्पर्क में उनका आमना सामना होता है, जिसे दो व्यक्ति अभिवादन करते समय या उसके बाद वार्तालाप करते, समय आदि। इस तरह के सम्पर्क में एक-दूसरे पर इन्द्रियों का प्रभाव पड़ता है और यहाँ इन्द्रियों का प्रत्यक्ष प्रयोग किया जाता है।

अप्रत्यक्ष या द्वैतीयक सम्पर्क में अन्तःक्रिया करने वाले व्यक्तियों का एक-दूसरे के आमने-सामने रहना आवश्यक नहीं है। वे पत्र, टेलीफोन या अन्य साधनों द्वारा सम्पर्क करते हैं। द्वैतीयक सम्पर्कों में इन्द्रियों का प्रभाव कम हो जाता है और व्यक्ति इन्द्रियों से केवल देखता और सुनता मात्र है। इसी से सम्पर्क का शान होता है।

सामाजिक सम्पर्क सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक भी।

सकारात्मक सम्पर्क उसे कहते हैं जो सहयोगी अन्तःक्रिया को जन्म देता है, जैसे समझौता, सहयोग, सात्मीकरण आदि। उदाहरण के लिए, यदि आप अपने अध्यापक से समाजशास्त्र पढ़ने के लिए सम्पर्क करते हैं, तो यह सकारात्मक सम्पर्क होगा। नकारात्मक सम्पर्क सकारात्मक सम्पर्क का विपरीत है। यह सम्पर्क असहयोगी अन्तःक्रिया को जन्म देता है, जैसे संघर्ष, प्रतिस्पर्धा आदि। उदाहरण के लिए, यदि आप अपने विवाह के लिए किसी लड़की-लड़के को देखने जाएं और उससे विवाह करने की सहमति न दे तो वह नकारात्मक सम्पर्क होगा।

ब– संचार –

अन्तःक्रिया का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व संचार है। केवल सम्पर्क होने से ही सामाजिक क्रिया का उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। सम्पर्क को सफल बनाने के लिए संचार का होना आवश्यक है।

संचार में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों से दूसरे व्यक्ति के विचार अथवा भावना के विषय में अनुमान लगाता है। डेविस के अनुसार सम्पर्क का सरूप प्रतीकात्मक और अर्थपूर्ण होता है। एक व्यक्ति के विचारों अथवा भावना को दूसरे व्यक्ति तक भाषा के द्वारा सबसे आसानी से पहुँचाया जा सकता है। भाषा के द्वारा किया गया संचार या तो बोल कर अथवा लिखकर होता है। लेकिन अलिखित और अवाचित संचार भी चिन्हों और प्रतीकों द्वारा संभव है। जन्म दिन के अवसर पर दिया गया फूल शुभकामना को वक्त करता है। आदि। संचार तब ही हो सकता है, जब वह –

अ – अर्थपूर्ण हो।

ब – अन्तःक्रिया करने वाले व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति जागरूक हो।

स – अन्तःक्रिया करने वाले व्यक्ति एक-दूसरे के उद्देश्यपूर्ण व्यवहार को समझे।

गिलिन और गिलिन ने संचार के दो प्रकार बतलाए हैं –

अ – पूर्ण संचार

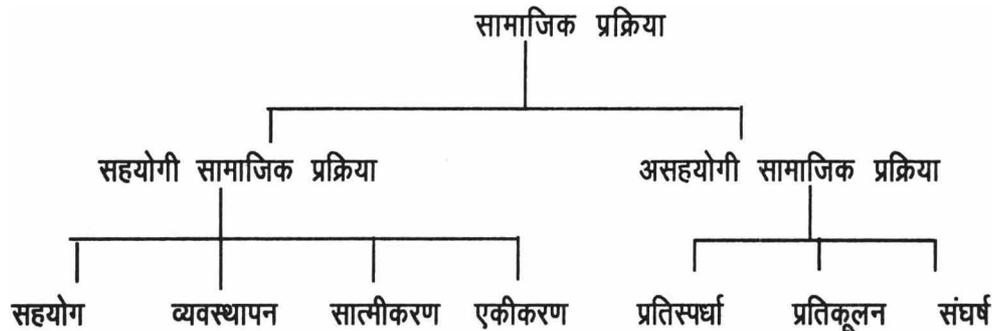
ब – अपूर्ण संचार

पूर्ण संचार तब होता है जब अन्तःक्रिया करने वाले व्यक्ति जो कुछ कहना चाहते हैं वह उसी अर्थ में समझ लिया जाए जिस अर्थ में वह कहना चाहते हैं। जब अन्तःक्रिया करने वाले व्यक्ति परस्पर अपनी बातों को नहीं समझ पाएँ तो वह अपूर्ण संचार होता है।

उदाहरण के लिए यदि आपसे आपके अध्यापक आपकी काँपी माँगते हैं और आप समझ जाते हैं कि सर काँपी माँग रहे हैं तो यह पूर्ण संचार होता है। इसके अतिरिक्त यदि आपकी कक्षा में एक जर्मन प्रोफेसर आकर जर्मन भाषा में भाषण देना शुरू करते हैं जो आप नहीं समझ पाते, तो यह अपूर्ण संचार होगा।

सामाजिक प्रक्रियाओं के प्रकार

सामाजिक प्रक्रियाओं के विभिन्न प्रकारों या स्वरूपों को दो भागों में बाँटा गया है।



सहभागी या संगठनात्मक सामाजिक प्रक्रियाएँ :

सामाजिक प्रक्रियाएँ जो समाज में एकीकरण संगठन और सहयोग बढ़ाने में योग देती है, वे सहगामी या संगठनात्मक सामाजिक प्रक्रियाएँ कहलाती है।

10.3 सहयोग

सहगामी सामाजिक प्रक्रियाओं में सहयोग एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। सहयोग सामाजिक जीवन का एक मूलभूत आधार है। इसके अभाव में सांस्कृतिक जीवन, समाज और राष्ट्र की कल्पना तक नहीं की जा सकती। मनुष्य अपनी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं एकाकी प्रयत्नों से नहीं कर सकता। वह अन्य व्यक्तियों या समूहों पर निर्भर रहता है। वह निर्भरता ही सहयोग की शुरुआत करती है।

सहयोग का अर्थ स्पष्ट करते हुए प्रो. ग्रीन ने लिखा है:

“सहयोग दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा किसी कार्य को करने या किसी समान इच्छित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाने वाला निरन्तर एवं सामूहिक प्रयत्न है।”

सदरलैण्ड तथा वुडवर्ड के अनुसार –

“किसी समान लक्ष्य के लिए विभिन्न व्यक्तियों या समूहों का परस्पर मिलकर कार्य करना ही सहयोग है।

”

मेरिल और एल्ड्रीज के अनुसार –

“सामाजिक अन्तःक्रिया के उस रूप को सहयोग कहते हैं जिसमें दो या अधिक व्यक्ति एक सामान्य ध्येय की पूर्ति के लिए साथ-साथ काम करते हैं।”

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सहयोग सामाजिक अन्तःक्रिया का वह स्वरूप है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति अथवा समूह किसी सामान्य रूप से इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संगठित रूप से मिलकर प्रयत्न करते हैं।

मानवीय सृजन के मूल में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण और सहयोग की भावना सन्निहित है। परिवार के सदस्य के पारस्परिक सहयोग के द्वारा ही बच्चों का पालन पोषण होता है। परिवार के सदस्यों तथा निकट सम्बन्धियों के पारस्परिक सहयोग यपर नातेदारी सम्बन्ध टिके हैं। कृषि और औद्योगिक उत्पादन प्रणाली में सहयोग की भूमिका महत्वपूर्ण है। मनुष्य की मनोवैज्ञानिक, जैविकीय, सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताएँ समूह के सदस्यों को पारस्परिक सहयोग के लिए प्रेरित करती है।

सहयोग की विशेषताएँ.

सहयोग की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा समूह का होना।
2. एक सामान्य उद्देश्य का होना।
3. ‘हम की भावना’ का पाया जाना।
4. सहयोग करने वालों का एक-दूसरे के प्रति जागरूक होना (चेतन प्रक्रिया)।
5. पारस्परिक सहायता एवं साथ-साथ मिलकर काम करने की भूमिका का पाया जाना।
6. लक्ष्य प्राप्ति के लिए निरन्तर और संगठित प्रयत्न करना।

सहयोग के लिए अनिवार्य तत्व :

सहयोग के लिए अनिवार्य तत्व हैं.

1. पारस्परिकता
2. समान लक्ष्य
3. सहयोग के लाभ के विषय में चेतना
4. अन्तःक्रिया
5. मध्यस्थता
6. श्रम विभाजन
7. लेनदेन

8. विनिमय और उपहार

9. कुशलता

चार्ल्स हॉर्टन कूले के अनुसार सहयोग के लिए समान हित, यथेष्ट बुद्धि, आत्म नियंत्रण तथा संगठन की क्षमता अनिवार्य तब है।

सहयोग के स्वरूप

सहयोग के स्वरूपों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर किया गया है –

अ – समूह की प्रकृति और आकार

ब – सम्बन्धों का स्वरूप

स – व्यवहारों के नियमन की पद्धति

ग्रीन ने समूहों की प्रकृति और आकार के आधार पर सहयोग के तीन प्रकार बताए हैं –

1. प्राथमिक सहयोग

2. द्वैतीयक सहयोग

3. तृतीयक सहयोग

1. प्राथमिक सहयोग

प्राथमिक सहयोग वह है जिसमें व्यक्ति समाज के उद्देश्य को अपना उद्देश्य समझता है और उसी के अनुरूप काम भी करता है। यहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होते। प्राथमिक सहयोग सामान्यतः प्राथमिक समूहों में पाया जाता है, जहाँ घनिष्ठ व आमने-सामने के सम्बन्ध होते हैं। परिवार, मित्र-समूह, पड़ोस, समुदाय आदि समूहों में प्राथमिक सहयोग पाया जाता है।

2. द्वैतीयक सहयोग –

इस प्रकार का सहयोग आधुनिक जटिल समाजों और द्वैतीयक समूह में पाया जाता है। इस तरह के सहयोग का स्वरूप प्रायः अवैयक्तिक तथा अत्यन्त जटिल होता है। यह औपचारिक प्रकार का सहयोग होता है क्योंकि इसमें व्यक्ति स्वतः व स्वेच्छा से सहयोग नहीं देता बल्कि औपचारिक सहयोग देता है। इस प्रकार के सहयोग में व्यक्ति स्वार्थ-प्रधान होते हैं। जब स्वार्थ पूरे हो जाते हैं तो सहयोग समाप्त हो जाता है। श्रम विभाजन को प्रक्रिया द्वितीयक सहयोग का अच्छा उदाहरण है।

3. तृतीयक सहयोग

जब व्यक्ति अथवा समूह अपने हित को ध्यान में रखकर एक समय विशेष में परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करना चाहते हैं तो उसे तृतीयक सहयोग कहते हैं। व्यवस्थापन इसी प्रकार के सहयोग का उदाहरण है। जब दो समूह या राष्ट्र एक दूसरे के साथ संघर्ष करते-करते थक जाते हैं और बदली हुई परिस्थितियों में परस्पर अनुकूलन कर लेते हैं तो उनमें पाए जाने वाले सहयोग को तृतीयक सहयोग कहा जाता है।

मैकाइवर और पेज ने सम्बन्धों के स्वरूप के आधार पर सहयोग के दो प्रकार बताए हैं –

1. प्रत्यक्ष सहयोग

2. अप्रत्यक्ष सहयोग।

1. प्रत्यक्ष सहयोग –

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति अथवा समूह समान उद्देश्य के लिए एक दूसरे के साथ मिलकर समान कार्य करें तो उसे प्रत्यक्ष सहयोग कहा जाएगा। परिवार और रक्त समूहों के बीच के संबंध अत्यन्त निकटता पर आधारित होते हैं, अतः इनमें प्रत्यक्ष सहयोग पाया जाता है। खेल के मैदान में विरोधी टीम को हराने के उद्देश्य में

जब किसी टीम के सदस्यों में सहयोग पाया जाता है और सभी मिलकर कार्य करते हैं, तो इसे प्रत्यक्ष सहयोग कहा जाता है।

2. अप्रत्यक्ष सहयोग

जब किसी समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए सहयोग करने वाले लोग असमान या भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करते होते हैं, तो इसे अप्रत्यक्ष सहयोग कहते हैं। आधुनिक समाज में श्रम विभाजन इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, जिसमें विभिन्न व्यक्ति एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अलग-अलग कार्य करते हैं। एक, पडा बनाने वाली फैक्ट्री में लोग अलग-अलग कार्यों में लगे होते हैं, परन्तु उनका सबका उद्देश्य एक ही है— कपड़ा बनाना। असहगामी या विघटनात्मक सामाजिक प्रक्रियाएँ :

असहगामी सामाजिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत वे प्रक्रियाएँ आती हैं जो समाज में विघटन उत्पन्न करती हैं। इनमें प्रतिस्पर्धा और संघर्ष प्रमुख हैं।

10.4 प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा

प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा तब पैदा होती है, जब सीमित लक्ष्यों को अनेक लोग प्राप्त करना चाहते हैं। प्रतिस्पर्धा के दौरान व्यक्तियों या समूह में कम या अधिक मात्रा में एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या-द्वेष के भाव पाए जाते हैं। इस कारण से इसे असहगामी प्रक्रिया माना जाता है। प्रतिस्पर्धा में सभी व्यक्ति एक-दूसरे को पीछे रख कर आगे बढ़ना चाहते हैं, अपने उद्देश्य को पाना चाहते हैं। अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा जहाँ एक ओर विघटन पैदा करती है, वहीं दूसरी ओर यह व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों को प्रगति की ओर ले जाने, अपनी स्थिति को ऊँची उठाने और कुशलतापूर्वक प्रयत्न करने की प्रेरणा भी देती है।

गिलिन और गिलिन के अनुसार –

“प्रतिस्पर्धा वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें प्रतिद्वंदी व्यक्ति या समूह किसी जनता के समर्थन तथा प्राथमिकता के माध्यम से लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और उस व्यक्ति या समूह को अपने हितों के समर्थन में अनुरोध करते हैं न कि अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हिंसा या इससे भय का प्रयोग।”

बीसेन्ज और बीसेन्ज के अनुसार –

“प्रतिस्पर्धा दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समान उद्देश्य जो इतने सीमित हैं कि सब उसके भागीदार नहीं बन सकते, को पाने के प्रयत्न को कहते हैं।”

ग्रीन ने लिखा है –

“प्रतिस्पर्धा में दो या दो से अधिक व्यक्ति या समूह समान लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं जिसके कोई भी दूसरों के साथ बाँटने के लिए न तो तैयार होता है और न ही इसकी अपेक्षा की जाती है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि प्रतिस्पर्धा या प्रतियोगिता दो या दो से अधिक व्यक्तियों या समूहों के बीच किसी सीमित वस्तु अधिकार या सेवा को प्राप्त करने के लिए प्रथा या नियम के अन्तर्गत किया गया प्रयत्न है।

प्रतिस्पर्धा की विशेषताएँ

1. प्रतिस्पर्धा दो या दो से अधिक व्यक्तियों या समूहों के बीच किसी सीमित वस्तु अधिकार या सेवा जिसकी पूर्ति माँग की तुलना में कम है, की प्राप्ति का प्रयत्न है।

2. प्रतिस्पर्धा में कुछ निश्चित नियम होते हैं। यह नियम सत्त्यों को प्राप्त करने के साधनों को सीमित कर देते हैं।
3. प्रातिस्पर्धा में किसी तीसरे पक्ष का होना आवश्यक है। जिसके समर्थन को प्राप्त करने का प्रयत्न दोनों पक्षों के द्वारा किया जाता है दो व्यक्तियों के लिए तीसरा पक्ष ग्राहक, परीक्षार्थियों के लिए परीक्षक तीसरा पक्ष आदि।
4. प्रतिस्पर्धा सामान्यतः एक अवैयक्तिक प्रक्रिया है आइ.ए.एस. या आर.ए.एस या माध्यमिक बोर्ड की परीक्षाओं में बैठने वाले परीक्षार्थियों की संख्या हजारों लाखों में होती है जो अपने-अपने तरीकों से परीक्षा की तैयारी करते हैं और जिन्हें एक-दूसरे के बारे में कुछ भी जानकारी साधारणतः नहीं होती।
5. प्रतिस्पर्धा की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता अहिंसात्मक तरीके से लक्ष्य प्राप्ति का प्रयत्न है।
6. प्रतिस्पर्धा सामान्यतः एक अचेतन प्रक्रिया है। इसका तात्पर्य है कि प्रतिस्पर्धी एक-दूसरे के प्रयत्नों के प्रति सामान्यतः जागरूक नहीं होते हैं। दे तो अपने स्वयं के उद्देश्यों और प्रयत्नों के प्रति ही जागरूक होते हैं।
7. प्रतिस्पर्धा एक निरन्तर प्रक्रिया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा पाई जाती है।
8. प्रतिस्पर्धा एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रतिस्पर्धा प्रत्येक समाज, स्थान एवं काल में मौजूद रहती है।
9. प्रतिस्पर्धा की प्रकृति परिवर्तनशील होती है। इसमें सफलता भी मिल सकती है, महत्वाकांक्षाओं का विकास भी होता है, इसमें असफलता भी प्राप्त हो सकती है तथा प्रतिस्पर्धा करने वालों में तनाव व संघर्ष भी हो सकता है।

प्रतिस्पर्धा के प्रकार

गिलिन और गिलिन ने प्रतिस्पर्धा के दो प्रमुख प्रकार बताए हैं –

1. वैयक्तिक प्रतिस्पर्धा
2. अवैयक्तिक प्रतिस्पर्धा

1. वैयक्तिक प्रतिस्पर्धा
गिलिन और गिलिन इसे चेतन प्रतिस्पर्धा भी कहते हैं। इसमें प्रतिस्पर्धा करने वाले एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से भली-भाँति जानते हैं। दो प्रतिद्वंद्वी प्रेमियों में किसी युवती के प्रेम को प्राप्त करने के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा वैयक्तिक या चेतन प्रतिस्पर्धा का उदाहरण है।

2. अवैयक्तिक प्रतिस्पर्धा –

गिलिन और गिलिन इसे अचेतन प्रतिस्पर्धा भी कहते हैं। इसमें प्रतियोगी एक-दूसरे को जानते-पहचानते नहीं हैं। वे अपने लक्ष्यों एवं प्रयत्नों के प्रति ही जागरूक होते हैं, न कि अन्य प्रतियोगियों के प्रति। भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाएँ इसका उदाहरण हैं। यह प्रतिस्पर्धा व्यक्तिगत उद्देश्यों को लेकर होती है।

प्रतियोगिता के स्वरूप :

गिलिन और गिलिन ने प्रतिस्पर्धा के चार स्वरूपों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है

1. आर्थिक प्रतिस्पर्धा
2. प्रतिस्पर्धा
3. भूमिका या प्रस्थिति के लिए प्रतिस्पर्धा

4. प्रजातीय प्रतिस्पर्धा

1. आर्थिक प्रतिस्पर्धा –

आर्थिक प्रतिस्पर्धा उत्पादन व व्यापार के क्षेत्र में होती है। व्यापारियों और उद्योगपतियों के बीच यह प्रतिस्पर्धा पाई जाती है। वे अधिक लाभ कमाने के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं।

2. सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा –

जब दो संस्कृतियों के लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, तो सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा प्रारंभ होती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ समझकर उसे दूसरों पर थोपने का प्रयास करता है। प्रोटेस्टेन्ट व कैथोलिक धर्म को मानने वाले लोगों में भी इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा है। दोनों ही धर्मों के लोग अपने-अपने धर्मों को ज्यादा ऊँचा दिखाने में लगे रहते हैं।

3. भूमिका या प्रस्थिति के लिए प्रतिस्पर्धा –

प्रत्येक मनुष्य सामाजिक स्तरीकरण के श्रृंखलाक्रम में अपनी प्रस्थिति ऊँची रखना चाहता है। वह इसके लिए प्रयास भी करता है। व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में उच्च प्रस्थिति प्राप्त करने या महत्वपूर्ण मानी जाने वाली भूमिका निभाने के लिए एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं। कला साहित्य और संगीत में भी इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा देखने को मिलती है।

4. प्रजातीय प्रतिस्पर्धा –

जब हम मनुष्यों को उनकी आनुवांशिक शारीरिक विशेषताओं के आधार पर अलग करते हैं तो हमारा तात्पर्य प्रजातीय से होता है। यद्यपि शारीरिक आधार पर कोई प्रजाति दूसरी प्रजाति से ऊँची या नीची नहीं होती, फिर भी प्रजाति के आधार पर स्तरीकरण की भावना आज भी संसार के विभिन्न भागों में देखने को मिलती है। प्रजाति के आधार पर भेदभाव की भावना के शारीरिक कारणों की अपेक्षा सांस्कृतिक कारण अधिक प्रभावशाली तरीके से कार्य कर रहे हैं।

अमेरिका में श्वेत और नीग्रो लोगों तथा अफ्रीका में अंग्रेजों तथा मूल निवासियों के बीच पायी जाने वाली प्रतिस्पर्धा प्रजातीय प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत ही आती है।

गिलिन और गिलिन द्वारा बताए गए प्रतिस्पर्धा के उपर्युक्त बार स्वरूपों के अतिरिक्त भारत में अनेक स्वरूप जातीय प्रतिस्पर्धा भी देखने को मिलती है। यहाँ विभिन्न जातियाँ सामाजिक संस्तरण की प्रणाली में ऊपर उठने का प्रयत्न करती हैं जिसे डी. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण के नाम से पुकारा

10.5 संघर्ष

समाज में एक और जहाँ सहयोग देखने को मिलता है वही दूसरी और संघर्ष भी पाया जाता है?। संघर्ष को एक मौलिक और सार्वभौमिक सामाजिक प्रक्रिया माना गया है जो प्रत्येक समाज और काल में कम या अधिक मात्रा में पाया जाता है। पूर्णतः संघर्ष-रहित समाज का पाया जाना असंभव है। संघर्ष सामाजिक सम्बन्धों में हर समय मौजूद रहता है। यह जीवन की एक वास्तविकता है, इसे अस्वाभाविक नहीं माना जाता।

जब कोई व्यक्ति या समूह अपने किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विरोधी को नुकसान पहुँचाने नष्ट करने, उसके हितों को चोट पहुँचाने या उसके कार्यों में बाधा डालने का प्रयत्न करता है तो इस स्थिति को संघर्ष के नाम से पुकारा जाता है।

ए. डब्ल्यू ग्रीन के अनुसार -

“संघर्ष दूसरे या दूसरों की इच्छा के विरोध प्रतिकार या बलपूर्वक रोकने के विचारपूर्वक प्रयत्न को कहते हैं।”

गिलिन और गिलिन के अनुसार –

‘संघर्ष बह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अथवा समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति विरोधी को प्रत्यक्ष हिंसा की चुनौती देकर करते हैं।’

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार –

‘सामाजिक संघर्ष में वे सभी क्रिया-कलाप सम्मिलित हैं जिनमें मनुष्य किसी भी उद्देश्य के लिए एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ते या विवाद करते हैं।’

स्पष्ट है कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बल-प्रयोग या हिंसा की धमकी द्वारा दूसरों की इच्छाओं को दबाना या उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करना ही संघर्ष है।

किंग्सले डेविस के अनुसार जहाँ प्रतिस्पर्धियों का ध्यान प्रतिस्पर्धा से हटकर प्रतिद्वंद्वियों पर केन्द्रित हो जाता है, वही संघर्ष प्रारंभ हो जाता है।

संघर्ष की विशेषताएँ

1. संघर्ष के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा समूह का होना आवश्यक है जो एक दूसरे के हितों को हिंसा की धमकी, आक्रमण, विरोध या उत्पीड़न के माध्यम से चोट पहुँचाने की कोशिश करते हैं।
2. संघर्ष एक चेतन प्रक्रिया है, जिसमें संघर्षरत व्यक्तियों या समूहों को एक दूसरे की गतिविधियों का ध्यान रहता है।
3. संघर्ष एक वैयक्तिक प्रक्रिया है। संघर्ष में ध्यान लक्ष्य पर केन्द्रित न होकर प्रतिद्वंद्वियों पर केन्द्रित हो जाता है।
4. संघर्ष एक अनिरन्तर प्रक्रिया है। संघर्ष सदैव नहीं चलता बल्कि रूक-रूक कर चलता है। इसका कारण यह है कि संघर्ष के लिए शक्ति और साधन जुटाने पड़ते हैं जो किसी भी व्यक्ति या समूह के पास असीमित मात्रा में नहीं पाए जाते।
5. संघर्ष एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। संघर्ष किसी न किसी रूप में प्रत्येक समाज और प्रत्येक काल में कम या अधिक मात्रा में अवश्य पाया जाता है।

संघर्ष के स्वरूप

संघर्ष के विभिन्न प्रकारों में गिलिन और गिलिन द्वारा बताए हुए निम्नलिखित पाँच स्वरूप प्रमुख हैं :

1. वैयक्तिक संघर्ष –

आपसी हितों के टकराने से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच होने वाला संघर्ष वैयक्तिक संघर्ष के अन्तर्गत आता है। वैयक्तिक संघर्ष की प्रकृति निरन्तर नहीं होती, कभी संघर्ष चलता है तो कभी बन्द हो जाता है तथा फिर चल सकता है। जब तक संघर्ष सकता है। जब तक संघर्ष की परिणति सहयोग में न हो जाए यह चलता रहता है।

2. प्रजातीय संघर्ष –

जब आनुवांशिक शारीरिक भेदभाव के कारण हम बस्तियों का वर्गीकरण करते हैं तो उसे हम प्रजाति कहते हैं। प्रजातीय संघर्ष समूहगत होता है। जब दो भिन्न प्रजातियाँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो कई बार उनमें संघर्ष भड़क उठता है। इसे ही प्रजातीय संघर्ष कहते हैं। इस प्रकार के संघर्ष अमेरिका में श्वेत और नीग्रो प्रजातियों और अफ्रीका में श्वेत और श्याम प्रजातियों के लोगों के बीच पाए जाते हैं।

3. वर्ग संघर्ष –

वर्ग संघर्ष इतिहास में आरंभ से हो रहा है। कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि –

"आज तक अस्तित्व में रहे समाज का इतिहास, वर्ग संघर्ष का इतिहास है।"

वर्तमान में औद्योगीकरण एवं पूँजीवादी व्यवस्था ने पूँजीपति एवं श्रमिक दो वर्गों को जन्म दिया है। इन दोनों में अपने-अपने हितों को लेकर होने वाला संघर्ष वर्ग-संघर्ष कहलाता है।

4. राजनीतिक संघर्ष

राजनीतिक संघर्ष के दो रूप देखने को मिलते हैं – पहला अन्तः देशीय व दूसरा अन्तर्देशीय। एक ही राष्ट्र के विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच होने वाला संघर्ष अन्तःदेशीय कहलाता है। विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच होने वाला संघर्ष जिसे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष कहा जाता है। सत्ता में आने के लिए विभिन्न दलों में होने वाला संघर्ष राजनीतिक संघर्ष है।

5. अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष

इस प्रकार का संघर्ष सामूहिक संघर्ष का ही एक प्रकार है। विभिन्न राष्ट्रों के बीच समय-समय पर होने वाले युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के ही उदाहरण हैं। भारत और पाकिस्तान तथा भारत और चीन के बीच होने वाले युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के अन्तर्गत आते हैं।

मैकाइवर और पेज ने संघर्ष के दो प्रकार – प्रत्यक्ष संघर्ष और अप्रत्यक्ष संघर्ष बताए हैं -

1. प्रत्यक्ष संघर्ष –

व्यक्ति-व्यक्ति और समूह-समूह के बीच होने वाले आमने-सामने के संघर्ष प्रत्यक्ष संघर्ष ही हैं।

2. अप्रत्यक्ष संघर्ष –

इसमें दो विरोधी प्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे के सम्पर्क में नहीं आकर इस प्रकार से कार्य करते हैं कि एक दूसरे के हितों या लक्ष्यों की पूर्ति में बाधा पड़ती है। अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा और विभिन्न राष्ट्रों के बीच चलने वाला शीत-युद्ध अप्रत्यक्ष संघर्ष के ही उदाहरण हैं।

संघर्ष के कारण :

संघर्ष के कई कारण हो सकते हैं। अतीत में संघर्ष का मुख्य कारण एक व्यक्ति द्वारा दूसरे पर अथवा एक समूह द्वारा दूसरे पर प्रभुत्व जमाना होता था। वर्तमान काल में संघर्ष का मुख्य कारण अधिक प्रभुत्व अधिक लगता है। संघर्ष के मुख्य कारण निम्नांकित हैं :

1. व्यक्तिगत भिन्नताएँ –

व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्नता होती है, कोई दो व्यक्ति एक से नहीं होते। शारीरिक गठन, बौद्धिक क्षमता, आदतों, अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं स्वभाव में भिन्नता संघर्ष को जन्म देते हैं।

2. सांस्कृतिक भिन्नताएँ –

व्यक्ति का जिस समाज में समाजीकरण हुआ है, उस समाज के मूल्यों, मान्यताओं व रीति-रिवाजों को वह व्यवहार में लाता है। वे सांस्कृतिक भिन्नताएँ जो समूह के बीच में होती हैं, व्यक्तियों में भी देखने को मिलती हैं, अतः संघर्ष होता है। परस्पर विरोधी संस्कृतियों में संघर्ष के अवसर अक्सर होते हैं।

3. परस्पर स्वार्थों का टकराव –

परस्पर स्वार्थों का टकराव भी संघर्ष को जन्म देता है। जब दो व्यक्ति या समूहों में परस्पर विरोधी स्वार्थ होंगे तो संघर्ष होगा। मिल-मालिकों का ध्येय अधिक पूँजी का अर्जन करना है जबकि मजदूर अधिक धन लेना चाहता है। अतः संघर्ष होता है। सरकार कम वेतन में अपने कर्मचारियों से काम लेना चाहती है जबकि कर्मचारी अधिक से अधिक वेतन प्राप्त करना चाहते हैं, फलतः दोनों में संघर्ष होता है।

4. सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन भी संघर्ष का एक महत्वपूर्ण कारण है। जब समाज की अवस्था में परिवर्तन होता है, तब नवीन विचारों मूल्यों के कारण संघर्ष पैदा होता है। नवीन परिवर्तन के साथ नये प्रतिमान उभरते हैं जो पुरानी व्यवस्था से मेल नहीं खाते। अतः संघर्ष होता है।

5. संकीर्ण निष्ठाएँ भी संघर्ष को जन्म देती हैं –
उपर्युका संघर्ष के कुछ मुख्य कारण हैं।

10.6 सारांश

इस एकाई में अंतःक्रिया, प्रक्रिया की अवधारणा सामाजिक प्रक्रिया के रूपों, सहगामी सामाजिक प्रक्रिया जैसे सहयोग और असहगामी सामाजिक प्रक्रिया और असहगामी सामाजिक प्रक्रिया जैसे प्रतिस्पर्धा और संघर्ष पर विचार किया गया है

यह सभी प्रक्रियाएँ प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। सामाजिक प्रक्रियाएँ ही समाज को निरन्तरता और गति प्रदान करती है। मानव समाज में सहयोग का स्थान प्राथमिक है। सहयोग के बिना मानवीय अस्तित्व के विषय में सोच भी नहीं सकते हैं। लेकिन कोई कितना भी सहयोगी समूह हो, उसमें संघर्ष के कोई न कोई लक्षण अवश्य मिलेंगे। इसी प्रकार, किसी भी संघर्ष में सहयोग या व्यवस्थापन की संभावनाएँ अवश्य छिपी रहती है। इसी प्रकार प्रत्येक प्रतिस्पर्धा में भी सहयोग के तब छिपे रहते हैं।

किसी भी सामाजिक घटना का अध्ययन अन्तःक्रिया के विभिन्न स्वरूप को दृष्टिगत रख कर करना आवश्यक है। सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक अवस्था और स्वयं समाज को भली-भाँति समझने के लिए सामाजिक प्रक्रिया एवं इनके प्रमुख स्वरूपों को समझना आवश्यक है।

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रतियोगिता की परिभाषा और विशेषताओं का उल्लेख कीजिए
2. संघर्ष की व्याख्या कीजिये
3. संघर्ष के कारणों और स्वरूपों पर प्रकाश डालिये
4. प्रतियोगिता और संघर्ष में भिन्नता बताइये

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. गिलिन, जे. एल. और गिलिन जे.पी.; कल्चरल सोशियोलॉजी, मैकमिलन, न्यूयार्क, 1954, पृ. 488.
2. डेविस, के.; ह्यूमन सोसायटी, मैकमिलन, न्यूयार्क, 1980, पृ. 149.
3. मैकाइवर, आर.एम. और पेज सी.एच. सोसायटी, मैकमिलन, लंदन, 1959, पृ.63
4. ग्रीन, डब्ल्यू.ए.; सोशियोलॉजी, एन एनालिसिस ऑफ़ माडर्न सोसायटी, मैकग्राओ हिल, 1952, पृ 6
5. दोषी एस.एल., जैन पी.सी.; समाजशास्त्र नई दिशाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2000, पृ. 333
6. सिंघी, नरेन्द्र कुमार, गोस्वामी वसुधाकर; समाजशास्त्र विवेचन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2003, पृ. 214.

